PAGES MISSING WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180658

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/A52 Accession No. H 28185

Author आरसी प्रसाद

Title आरती

This book should be returned on or before the date last marked below.

सुश्री अमृता प्रीतम

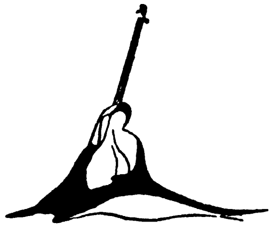

आशू

अमृता प्रीतम

सर्वोदय साहित्य मंदिर,
कोठी, (बसस्टेण्ड,) हैदराबाद द.

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

मूल्य	:	तीन रुपए
चित्रकार	:	इन्द्रजीत
प्रकाशक		आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
मुद्रक	:	मूवीज प्रेस, चावड़ी बाजार, दिल्ली

इस उपन्यास की नायिका 'अशू' को

निवेदन

चौमुखे दीपक की आलोकमयी आभा-जैसी अलौकिक प्रतिभा की धनी, नवीन विचारों की संवाहक और नारी-हृदय की तड़प को कलम की नोक पर उतारने वाली लेखिका; ओजस्वी, प्रभावशाली और मीठा व्यक्तित्व, सदैव खिला रहने वाला हंसमुख चेहरा—ये हैं सुश्री अमृता प्रीतम जो नवीन भारत के शीर्ष कोटि के कवियों और कथाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है और नये पंजाब की शक्तिशाली आवाज मानी जाती हैं। आपका जन्म पश्चिमी पंजाब के गुजरांवाला में १९१९ में हुआ था। आपके पिता सरदार करतारसिंह हितकारी संस्कृत और हिन्दी के प्रकांड पंडित थे। वे ब्रज-भाषा और पंजाबी के माने हुए कवि भी थे।

अमृता प्रीतम ने सबसे पहली कविता सोलह वर्ष की अल्पायु में लिखी थी। पहले आपने अपने पिता की प्रेरणा से परम्परागत कविता लिखी, जिसका विषय समाज-सुधार और धार्मिक था। उसके पश्चात धीरे-धीरे जैसे ही आप में सामाजिक-चेतना जागृत होने लगी, वैसे ही आप की दृष्टि विशाल होती गई। आपने समाज की बलिवेदी पर परवान चढ़ने वाले प्रेम की अभिव्यक्ति में मनुष्य की सारी पीड़ा को समोकर रख दिया।

१९३८ में आपने लाहौर से 'नवीं दुनिया' मासिक-पत्र निकाला। आठ वर्ष तक आप आकाशवाणी-लाहौर के लिए गीत, संगीत-रूपक और पंजाबी साहित्य पर समालोचनायें लिखती रहीं।

१९४७ तक आपके छः सात काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। देश के विभाजन के पश्चात से आप आकाशवाणी, दिल्ली में कार्य कर रही हैं।

देश के विभाजन से आपकी कविता में नए अंकुर फूटे। देश का विभाजन मानवता के लिए एक ऐसी चेतावनी था कि समूचे साहित्य में समाज और राजनीति में प्रचलित गलत और अमानवीय मूल्यों के प्रति विद्रोह की भावना पैदा हो गई। आपकी कविता 'अज्ज आखां वारिस शाह नूं' इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। यह कविता अनेक भाषाओं में अनुदित हुई और इस गुनगुनाते हुए लोगों की आँखों में आँसू देखे जाने लगे। देश के विभाजन पर आपने और भी अनेक दर्द-भरे गीतों की रचना की है।

अमृता प्रीतम के दो अन्तिम काव्य-संग्रह 'सुनेहड़े' और 'अशोकाचेती' आपकी कविता के विकास की दो सीढ़ियाँ हैं।

अमृता प्रीतम में चहुँमुखी प्रतिभा है। आपने चार उपन्यासों की रचना की है, और अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं। आपका 'पिंजर' उपन्यास कई भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो चुका है और अब अंग्रेजी में भी शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है।

आपने लोक-गीतों का भी संग्रह किया है। 'पंजाब दी आवाज' और 'मौली ते मेहन्दी' आपके लोक-गीतों के संग्रह हैं।

आपके काव्य-संग्रह 'सुनेहड़े' को साहित्य-एकेडमी ने पाँच हजार रुपये के सर्वोत्तम पुरस्कार से सम्मानित किया है।

पंजाब के भाषा-विभाग की ओर से अभी पिछले दिनों आपको ग्यारह सौ रुपये का पुरस्कार तथा मान-पत्र भेंट किया गया था।

आज आप पंजाब की आवाज मानी जाती हैं और समूचे भारत में आपकी इस आवाज की प्रतिध्वनि गूंजने लगी है।

'अशू' आपका ताजा उपन्यास है। इस उपन्यास में आपने अपनी अनोखी, निराडम्बर, मार्मिक शैली में एक कलाकार लड़की के जीवन की आन्तरिक उलझनों का चित्रण करते हुए नवीन भारत की विधातृ नारी का मुक्ति-मार्ग प्रशस्त किया है।

—प्रकाशक

१

प्यास

कॉलिज की संगीत-सभा में इस बार लड़कियों ने अशू को बड़े चाव से बुलाया था। अशू को देखने की और उसका गाना सुनने को लड़कियों की चिरकाल से अभिलाषा थी। एक लड़की ने अशू के लिए छोटी इलायचियाँ पिरो कर एक हार बनाया था। मोतिया की ऋतु नहीं थी, फिर भी एक लड़की ने सफेद खद्दर की कलियाँ काटकर अशू के लिए एक गजरा गूँथा था और एक लड़की ने सफेद मोतियों की लड़ी बनाकर अशू के बालों में लगा दी थी।

अशू को आज कॉलिज की जवान, चाव-भरी लड़कियों से इतना प्यार पाने का अजीब अनुभव हुआ था। वह नहीं जानती थी कि उसकी आवाज और उसके गीत लड़कियों के दिलों में इतना घर कर चुके हैं। संगीत-सभा के समाप्त हो जाने पर कितनी ही देर वह उन्हीं के बीच बैठी रही। उन्हीं के साथ मिलकर चाय पी, उनके कमरे देखे, उनके नाम पूछे और उनके साथ बैठकर तसवीर खिंचवाई।

उन लड़कियों में एक लड़की तारा थी जो सारे समय अशू के साथ ही रही थी पर जिसने उससे इतनी बातें नहीं की थीं जितना कि उसे तकती रही थी। तारा को बस यही सोलहवाँ बरस होगा। उसका मुख बड़ा भोला और बालकों जैसा था।

अशू को तारा अच्छी लगी। वह एक पतली-दुबली, लम्बी और बांकी लड़की थी। किसी के कानों में पड़ी हुई बालियाँ अशू को कभी इतनी अच्छी नहीं लगी थीं जितनी कि उसने तारा के कानों में फबती हुई देखीं। तारा की नाक में सात नगों की तिल्ली पड़ी हुई थी। अशू को आज पहली बार तिल्ली भी अच्छी लगी। तारा गाती भी थी। पहले तो वह अशू के इतने बढ़िया गाने के बाद गाने के लिए तैयार नहीं थी, पर संगीत-सभा में से उठ आने के बाद एक लड़की के कमरे में चाय पीते हुए उसने एक गीत गा दिया। तारा के गले में बहुत हरकत नहीं थी, पर अशू ने देखा कि वह गाती सुर में थी। उसने तारा की बहुत तारीफ की।

"आपसे मिलने के लिए मैं कभी आपके घर आ जाऊँ?" अशू जब जाने लगी तब तारा ने उससे पूछा।

"जब जी चाहे," अशू ने कहा।

"आपका पता?"

अशू ने अपने घर का पता तारा को लिख दिया।

तीन-चार दिन ही बीते होंगे कि तारा अशू से मिलने के लिए आई। सनीचर का दिन था और दोपहर के बाद का सारा समय तारा के पास खाली था।

"यह मेरी छोटी बहन है—नीता।" अशू ने कहा।

"बिलकुल आप पर है। बड़ी होकर यह भी आपकी तरह अच्छा गाएगी।"

"मुझे तो अभी तानपुरा भी नहीं छेड़ने देतीं", नीता हँस पड़ी।

"तू गाएगी, मुझसे भी अच्छा गाएगी, पर अभी पढ़ तो ले।"

अशू, तारा और नीता इसी तरह छोटी-छोटी बातें करती रहीं।

तारा जब आई थी उसी समय नीता दर्जी से अपनी नई सिली कमीज लेकर आई थी। अशू ने अब नीता को वह कमीज पहनवा कर देखा कि नाप ठीक है या नहीं। कमीज का रंग कच्चे अंगूरों का-सा था।

"इसके ऊपर अगर हरे रंग के धागे से काम किया जाए तो बहुत ही सुन्दर लगे," तारा ने कहा।

"दीदी को तो समय नहीं मिलता। यह कभी भी मेरी कमीज पर फ़ूल नहीं बनातीं।"

"ले आ, मैं बना दूँ, मैं भी तो तेरी बहन हूँ।"

नीता अपने स्कूल की बातें सुनाती रही। तारा ने कमीज के गले पर पैन्सिल से एक फ़ूल बना कर उसे धागे से भर दिया। नीता आज बड़ी खुश थी।

अशू ने जब नीता के हाथ रसोई में चाय बनाने के लिए सन्देसा भेजा और साथ ही यह कहला भेजा कि चाय के साथ आज कोई खास चीज बनाई जाए, तो तारा स्वयं उठकर रसोई की ओर चल दी।

"आज मेरा जी कर रहा है कि मैं आप चाय बनाऊँ।"

"ऐसे मेहमान तो रोज आएँ," कहकर अशू हँसने लगी।

आधा घंटा भी नहीं हुआ होगा कि तारा ने चाय की सब चीजें मेज पर लगा दीं।

"मैं होस्टल में रहती हूँ न, इसलिए घर की पकी हुई रोटी के लिए तरस गई हूँ। घर की बनी कोई भी चीज मुझे बहुत अच्छी लगती है।"

"ये क्या हैं, शकरपारे? अभी बनाए हैं?" अशू हैरान हो गई।

"ये तो बड़े ही स्वादिष्ट हैं, मैंने इतने अच्छे कभी नहीं खाए," नीता बोली। वह आज बहुत खुश थी।

"आज, तारा, रात को खाना खाकर जाना," चाय पीते समय अशू ने कहा।

"फिर तो मेरा होस्टल बन्द हो जाएगा।"

"तो फिर, तारा बहन जी, आप हमारे घर ही रह जाइयेगा," नीता ने पास बैठे हुए कहा।

"मुझे कोई अपने घर नहीं रखता," तारा हँसने लगी।

"आपकी माता जी कहाँ हैं?"

"अपने गाँव।"

"वह यहाँ आती हैं?"

"वह नहीं आतीं, मैं छुट्टियों में जाती हूँ।"

चाय समाप्त हुई। नीता खेलने चली गई और अशू तारा को अपने गाने के कमरे में ले गई।

"मेरा तानपुरा," अशू ने अपने तानपुरे पर से पतला

सफेद कपड़ा हटाकर दिखाया जो एक अत्यन्त मूल्यवान भेंट की भाँति प्रतीत होता था।

तारा आश्चर्यचकित-सी हो गई थी। तानपुरे पर हाथी-दाँत का इतना बारीक काम किया हुआ था कि तार छेड़ने की बात कौन कहे, उस पर दृष्टि नहीं टिक पाती थी।

अशू ने तारों को छेड़ा और एक भरी हुई गूँज सारे कमरे में फैल गई।

"इसके लाने-लेजाने में बड़ी मुसीबत होती है। इसलिए मैं इसे किसी खास जगह ही ले जाती हूँ, नहीं तो अक्सर छोटा तानपुरा ही ले जाती हूँ।"

फिर अशू ने तारा को जोड़ी दिखाई, वायलिन दिखाई, मैंडोलिन दिखाई, और अन्त में कमरे में लगी हुई अपनी माँ की तसवीर के पास आकर रुक गई।

"यह मेरी माँ...।"

"बड़ी सुन्दर थीं," तारा ने कहा और अपनी दोनों बाहें अशू के गिर्द डाल दीं—"आप मुझे अपनी छोटी बहन बना लीजिए," तारा ने इतने प्यार-भरे स्वर में कहा कि अशू ने तारा को अपनी बाहों में भींच लिया।

"मेरी माँ बहुत सुन्दर गाती थीं, बहुत सुन्दर।"

"मुझे मालूम है।"

"तुम्हें मालूम है ?"

"वह नाचती भी थीं।"

अशू चुप हो गई। उसने तारा से नहीं पूछा कि उसे कैसे मालूम था।

"तारा, माँ से बिछुड़ कर तुम्हारा जी लग जाता है ?" अशू ने कुछ देर के बाद पूछा।

"जी को तो अब लगना ही पड़ेगा, माँ से ही बिछुड़ कर नहीं, सबसे बिछुड़ कर।"

"सबसे बिछुड़ कर क्यों ?"

"मैंने ऐसे ही कहा। मेरे तो सिर्फ माँ है, और कोई है भी नहीं," तारा के सुते हुए मुँह पर पीड़ा की एक रेखा दौड़ गई।

अशू ने तारा को अभी तक सिर्फ हँसते हुए ही देखा था। "तुम्हारे पिता जी, तारा ?"

"मैं बहुत छोटी थी जब वह गुजर गए।"

"कोई भाई ?"

"भाई मेरे कोई नहीं, और बहन आप हैं।"

"तारा, वैसे तो तुम्हारी माता जी अभी भी अकेली रहती हैं, लेकिन जब तुम्हारा ब्याह हो जाएगा, तब वह बिलकुल अकेली हो जाएँगी।"

"मैं ब्याह नहीं करूँगी।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"यह हो सकता है, दीदी, मैं कर सकती हूँ।"

"सब लड़कियाँ ऐसे ही कहा करती हैं।"

"नहीं, दीदी, मैं ऐसे ही नहीं कहती···मुझे ब्याह तो करना था और अब तक कब का हो भी चुका होता···पर अब लगन की घड़ी निकल चुकी है।"

"तारा !"

"हाँ, दीदी ! लगन सुभा हुआ था, बाजे बज रहे थे, मैंने चूड़ा भी पहना था, फिर फेरे लेने वाला कुछ सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते इतनी देर कर दी कि लगन की घड़ी निकल गई।" तारा के बालकों जैसे मुख पर मानो अनेक वर्षों ने अपना हाथ रख दिया और उसका मुख एकाएक गहन गम्भीर बन गया।

"तारा !"

"बड़ी छोटी-सी कहानी है, दीदी ! फिर बाजे बन्द हो गए और वह फेरे लेने वाला अपने घर लौट गया।"

"ऐसा कैसे हुआ, तारा··?"

"कुछ नहीं, दीदी ! मेरी माँ ने अपने गाँव में ही मेरी मंगनी कर दी थी। असल में जब मेरी मंगनी हुई थी, उस समय मेरे पिता जी जीवित थे। फिर वह गुजर गए और हम सबके भाग्य फट गए। मैंने अपने मंगेतर को देखा था और हौले-हौले मेरे दिल में कई सुपने जाग उठे थे। कई बार हमने यह बात उड़ती-उड़ती सी सुनी थी कि मेरी होने वाली ससुराल के लोग सोच में पड़े हुए हैं। हमारा कोई कामकाज तो था नहीं, और जमा पैसा भी दिन-दिन उठता जाता था। पर मेरी माँ कहती थी कि लोग तो ऐसे ही कहा करते हैं, मुँह से कही बात भी कभी किसी ने लौटाई है। अगर लड़के का बाप गरीब हो जाता तो क्या मैं वहाँ बेटी का ब्याह न करती···लोग तो ऐसे ही अपने मन से जोड़ते हैं···और माँ ने उन्हें कहला भेजा कि वह जल्दी ब्याह कर लें। पहले तो वह कहते रहे कि अभी लड़के का काम नहीं लगा···ब्याह अगले

बरस करेंगे···पर फिर वह मान गए···।"

"फिर, तारा ?"

"फिर ब्याह रचा गया, सारी तैयारियाँ उसी तरह हुईं जैसे कि अक्सर होती हैं। उन लोगों ने माँ को कहलवा भेजा कि बरात की रोटी बहुत अच्छी हो, जिससे बराती खुश हो जाएँ। माँ ने अपनी सामर्थ्य के बाहर जाकर तैयारियाँ कीं··· बरात आई और जैसा हम लोगों में रिवाज है, मैंने उसके गले में जयमाला डाली।"···

"फिर, तारा ?"

"उन्होंने खाना खाया···।"

"फिर ?"

"हम लोगों में फेरे से पहले ही ससुरालिये दहेज ले लेते हैं···।"

"फिर ?"

"उस समय उन लोगों ने जो कुछ कहा, वह मैं नहीं कह सकती, दीदी···!"

"तारा···!"

"उन लोगों ने बहुत कुछ कहा। मेरी माँ ने हाथ जोड़े-'मेरी लाज रख लो'···पर उनके बोल सहे नहीं जाते थे,दीदी···।"

"लड़के ने भी कुछ कहा ?"

"उसने तो कुछ नहीं कहा, दीदी ! पर कहते हैं उसने अपने माँ-बाप को कहने से रोका नहीं।"

"और इतने में लगन का समय हो गया होगा ?"

"पंडित बहुत जल्दी कर रहा था। वेदी के पास बैठे हुए

उसने सन्देसे पर सन्देसा भेजा कि लड़की को जल्दी ले आओ···कमरे में मेरी माँ हाथ जोड़े हुए थीं और मैं अन्दर के कमरे में खड़ी रो-रो कर बेहाल हो रही थी।"

"हाय, तारा !"

"अब तो मैं सब कुछ सह चुकी हूँ, दीदी ! आप ही सुना रही हूँ। पिछले बरस तो जब मुझे यह बात याद आ जाती थी, मेरे हाथ काँपने लगते थे।"

"तो लगन का समय निकल गया ?"

"हाँ, दीदी ! न वह दहेज उठाते थे, न फेरे होते थे···।"

"उनके किसी सम्बन्धी ने भी उन्हें कुछ न कहा ?"

"कइयों ने उन्हें समझाया, दीदी···पर कइयों ने माँ से भी यह कहा कि उन्होंने अगर ब्याह कर भी लिया तो वह लड़की को बसाएँगे नहीं···दिल बहुत खट्टे हो गए थे, दीदी···उस रात मेरी माँ को तीन बार गश आया और वह बेहोशी में मेरे पिता जी को पुकारती रहीं।"

"मुझसे सुना नहीं जाता, तारा !"

"हाँ, दीदी, नहीं सुना जाता, पर मैंने यह सब कुछ देखा।"

"तुम क्या सोचती होगी···?"

"पहले तो मेरा रोना ही नहीं रुकता था। कभी जी करता था कि मैं आप जाकर उससे पूछूँ। मेरा हक था उस पर। मैं इतने बरस उसके नाम के साथ जुड़ी रही थी···कभी जी में आता था कि मैं आप जाकर 'ना' कर आऊँ। जो मेरे दरवाजे आकर भी मुझे साथ नहीं ले जा रहा था, वह मेरा

कौन लगता था···पर मैंने कुछ न किया···मेरे हाथों कुछ न हो सका···।"

"तारा···!"

"मैं दरवाजे के पीछे खड़ी हुई थी, वह बाहर वाले कमरे में था और मेरा डाला हुआ हार अभी तक उसके गले में था···।"

"उफ़, तारा !"

"पंडित ने आकर कहा कि लगन का समय निकल चुका है और अब अगर वह कहें भी तब भी, ब्याह नहीं हो सकता··· सब लोग वापस चले गये···दीदी, जब तक लगन का समय नहीं निकला था, मैं रोती रही थी, पर जैसे ही फैसले की घड़ी बीत गई, मेरे आँसू सूख गए। मैंने अपनी माँ को सम्भाला। मैंने अपने हाथों से बिखरे हुए दहेज को सम्भाला। मैंने अपने हाथों से लगी हुई वेदी को हटाया···"

"हाय, मेरी तारा···!"

"जितनी देर मुझे लगता रहा कि वह मेरा कुछ लगता है, मैं रोती रही थी। उस घड़ी कितनी ही बार मेरा मरने को जी किया···पर जैसे ही वे लोग चले गए, मेरे अन्दर सारे सम्बन्ध टूट गए। फिर मैंने मरना नहीं सोचा···मैं किसके लिए मरती···कोई मरता तो उसके लिए है जिसके लिए जीना चाहे और जी न सके···मैं तो उसके लिए नहीं जीना चाहती, फिर मैं उसके लिए क्यों मरूँ ?"

अशू ने तारा को बहुत प्यार किया, उसे अपनी बाहों में भर-भर लिया, और कितनी ही देर तक उसके बालों में अपनी

उँगलियाँ फेरती रही ।

"जो किस्मत ने एक ऐसा दिन भी दिखाया था तारा, तो उसका क्या पता है उसने कितना सुख तुम्हारे लिए संभाल कर रखा होगा ।"

"वह सुख मुझे आज मिल गया है । आज मुझे मेरी दीदी मिल गई हैं । आप मेरी दीदी बनेंगी न ? मुझे और कुछ नहीं चाहिए ।"

अशू बोल न सकी । उसकी आँखों से आँसू ढुलक कर तारा के माथे पर गिर पड़े ।

"यहाँ मैं एफ० ए० में दाखिल हुई हूँ । जब यह बात हुई तब मैं पढ़ाई छोड़ चुकी थी । माँ ने पढ़ना छुड़ा दिया था । फिर मैंने माँ को मना लिया कि अब मैं पढ़ूँगी ।"

"यह तुमने बहुत अच्छा किया, तारा ! उस तरह समय नहीं काटा जा सकता था और वैसे भी तुम्हें अपने पैरों पर खड़ा होना ज़रूरी था ।"

"उस गाँव में रहना मुझे बहुत अखरता था । हमारा मकान वहाँ है, इसलिए माँ को तो वहाँ रहना ही है···उन लोगों के घर भी वहीं हैं······।"

"उसका नाम क्या है, तारा ?"

"दीदी, अब नाम पूछ कर क्या करेंगी···मैंने तो सोचा था कि उसका नाम भी भुला दूँगी ··पर, दीदी, एक बात बताऊँ ?"

"हाँ, तारा !"

"उसने मंगनी की जो अँगूठी मुझे दी थी उस पर उसका नाम लिखा हुआ था । वह अँगूठी मैं फेंक न सकी, दीदी !"

"हाय तारा, औरत जब किसी से प्यार करती है तो कैसे प्यार करती है। कितना प्यार करती है !…निरे पूरब के कालिदास की शकुन्तला ही नहीं, बल्कि पश्चिम के हार्डी की टैस भी…जब पानी के बरतन में अपने दोनों हाथ डाल कर अपने प्यारे के हाथों से खेलती है और वह अपनी उँगलियाँ उसकी उँगलियों में डाल कर पूछता है, 'बताओ तो तुम्हारी कितनी उँगलियाँ हैं और मेरी कितनी ?', तो वह कहती है : 'सभी तुम्हारी हैं।'

"पर मुझे उससे प्यार नहीं है, दीदी !"

"तुमने जो सुपने उसके साथ-जोड़े थे, तुम उसको भुला नहीं सकतीं, तारा ?"

"मैं भुला चुकी हूँ, दीदी !"

"पर उसकी निशानी…?"

"ऐसे ही जीवन की इस घटना को याद करने के लिए रखी हुई है।" अब तक बातें करते कई बार तारा का गला तो भर आया था पर वह रोई नहीं थी, बातें करती रही थी, पर अब तारा की आँखों में आँसू छलछला आए।

तारा ने अपनी आँखों में एक सवाल भर के अशू के मुख की ओर देखा, पर वह पूछना चाहती हुई भी कुछ न पूछ सकी।

"तृप्ति का सार वही जानता है जिसने कभी प्यास अनुभव की हो," अशू ने मन-ही-मन कहा। उसके हृदय में एक टीस-सी उठी।

अशू आज तक अडोल रही थी। न कोई इच्छा उसके

सामने थी, न उसकी अपूर्ति का उसको ज्ञान था। यदि कोई चाहना उसके हृदय में आई थी तो वह केवल कल्पना में आई थी, और यदि उसकी पूर्ति हुई थी तो वह भी कल्पना में ही थी। अशू एकान्त में रहती थी, बिलकुल शान्त···राग और अभ्यास यही उसका जीवन था···

आज अशू के मन में उसके अपने ही एक विचार ने विफलता भर दी, "तृप्ति का सार वही जानता है जिसने कभी प्यास अनुभव की हो," परछाइयाँ लम्बी हो गई थीं। आखिर तारा चली गई। अशू ने रोज की तरह शाम को अभ्यास किया। नीता के साथ रात का खाना खाया। फिर नीता को स्कूल का काम करवाया। पर जब नीता सो गई, अशू नहीं सो सकी।

"तृप्ति···प्यास···आखिर उस 'शान्ति' का क्या अर्थ है जिसने कभी 'भटकन' नहीं देखी···उस 'कल्पना' का क्या अर्थ है जिसने कभी 'जिन्दगी' नहीं देखी···उस 'प्राप्ति' का क्या अर्थ है जिसने कभी 'साधना' नहीं देखी···" और अशू की पलकें अनिद्रा से भर गईं।

२
बून्दें

धूप की तेजी कम हो गई थी और सावन की उमस भी घट गयी थी।

पर अशू के जी में एक घुटन-सी थी। पूरे चार दिन हो गए थे, वह सिर के दर्द के कारण बिस्तर से उठ नहीं सकी थी।

कुछ ही देर पहले अशू ने तौलिया पानी में भिगो कर अपने शरीर को धीरे-धीरे पोंछा था, दर्द से दुखते माथे को धोया था और जब उसने शीशे में अपना मुँह देखा था जैसे पीड़ा और थकान की पतली लकीरें उसके मुँह पर पड़ गयी हों। अशू ने अपनी सारी चिन्ताएँ अपने मन पर से झटकारने की चेष्टा की थी, पर चिन्ता की लकीरें उसके मुख पर से नहीं हटी थीं। उसके कोमल अंगों पर एक थकान-सी चढ़ी हुई थी जिसकी जकड़ में से निकलने के लिए उसने फिर अपने आप को झकझोरा था और शीशे के सामने से हट कर वह अपने कमरे में चली गयी थी जो मुकान के दूसरे कमरों

से अलग था । इस कमरे में एक बड़ी दरी पर लाल रंग का ईरानी कालीन बिछा हुआ था जिस पर एक पतले सफेद कपड़े से ढका हुआ एक तानपुरा पड़ा था । दाएँ हाथ से कपड़े को हटाते हुए अपने बाएँ हाथ से अशू ने तानपुरे की खूँटियाँ कसी थीं और फिर दाएँ हाथ की उँगलियों से तारों को टुनकारते हुए उसने तानपुरे का पहला तार पंचम में मिलाया था, जबर-दस्ती—मानो उसके हाथ उसके कहे में न हों। उसने तानपुरे के दूसरे तार को सा में मिलाया था और फिर उसी तरह सफेद पतले कपड़े को तानपुरे पर डाल कर वह पहले कमरे में जाकर अपने बिस्तर पर लेट गई थी।

"अशू बीबी !"

"माँ।"

"राजिन्द्र बाबू आए हैं।"

"अच्छा," अशू ने अपनी चादर को हटाया और उठने लगी। फिर जैसे उसके शरीर ने उसका कहा न माना। वह उसी तरह लेट गई और उसने उसी तरह अपनी चादर कंधों तक ओढ़ ली और कहा, "यहीं भेज दो, माँ।"

"अच्छा···उनके साथ कोई और भी है," मुड़ कर अशू की दासी ने कहा।

"उनके साथ कोई और भी है ?···" अशू आगे कुछ कहने को थी कि आनेवाले कमरे की दहलीज तक आ पहुँचे।

संध्या ढल चुकी थी । अँधेरा धीरे-धीरे कमरे में फैल रहा था। अशू ने आने वालों को गौर से देखा, उसके माथे पर आश्चर्य की रेखा अंकित हो गई।

"आप ?" अश्रू के मुँह से निकल गया।

"मैं...!"

"राजन !" अश्रू के मुँह से फिर निकला पर बहुत धीमे से।

"आज मैं राजन को कहीं से पकड़ कर ले आया हूँ," राजेन्द्र बाबू ने कहा।

"कहीं से नहीं, अश्रू जी, मेरे घर से और यह मुझे पकड़ कर नहीं लाया है, मैं आप आया हूँ," कहकर राजन मुस्करा दिया। अश्रू को याद आया, राजन के मुख पर ऐसी ही मुस्कराहट थी, बड़ी भरवाँ, गहरी और अडोल, जब उसने पिछले बरस उसे एक संगीत-सभा में देखा था। आज उसने दूसरी बार राजन को देखा। शायद राजन ऐसे ही मुस्कराता था, बड़ा भरवाँ, गहरा और अडोल-सा।

"धन्यवाद !" अब अश्रू की आवाज कुछ भर कर निकली। पहले आश्चर्य पर वह विजय पा चुकी थी।

"पर आने के लिए कहा तो मैंने था," राजेन्द्र ने एक दावे के साथ कहा।

"धन्यवाद !" अब अश्रू हँस दी। उसकी स्वाभाविकता उसके पास लौट आई थी। बाएँ हाथ की कोहनी पर हाथ रख कर वह बिस्तर से उठने लगी।

"नहीं, अश्रू जी ! अगर आप ऐसे करेंगी तो हम अभी वापस चले जायेंगे। आप ऐसे ही लेटी रहिये। मुझे राजेन्द्र ने बताया था कि तीन चार दिन से आपकी तबीयत ठीक नहीं है," राजन ने कहा और कमरे में इस तरह निश्चल खड़ा रहा, मानो उसे पक्का पता हो कि अश्रू उसका कहा अवश्य मान

लेगी।

अशू फिर वैसे ही लेट गई। चादर उसने फिर कंधों तक पहले की तरह ओढ़ ली। राजन और राजेन्द्र पास पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गए।

"मेरा ख़याल था आप राजन को पहचान नहीं सकेंगी।" राजेन्द्र ने अशू से कहा।

वह बोली नहीं, पर उसने राजन के मुख की ओर गौर से देखा।

"हाँ—याद ही होगा। पिछले बरस आपने इसे देखा था और फिर आपने इसे कई बार याद भी तो किया था।" राजेन्द्र हँसने लगा।

अशू के मुख पर एक संकोच-सा आ गया, पर उसने पहले आश्चर्य की तरह इस संकोच को भी सम्हाल लिया, और स्वाभाविक बनते हुए कहने लगी, "इन्होंने उस दिन बड़ी ही अच्छी कविता सुनायी थी।"

"अगर कहीं राजन अपनी वह कविता आपके मुँह से सुन सकता…।" राजेन्द्र हँस दिया।

"अब भी सुनूँगा, जब आप अच्छी हो जाएँगी।"

"और फिर…?"

"फिर लिखने की हिमाकत तो जरूर करूँगा लेकिन गाने की कभी नहीं करूँगा।" राजन के मुख पर उसकी वही भरवाँ, गहरी और अडोल-सी मुस्कराहट आ गई।

"आपने तो बहुत से गीत लिखे होंगे…।"

"शायद गीत लिखने के सिवा और कुछ किया भी नहीं,

ग्रौर ग्रगर ग्राप गाएँ, तो मैं ग्रौर भी बहुत से गीत लिखूंगा।"

"ग्रगर मैं गाऊँ तो···गोया वैसे ग्राप नहीं लिखेंगे।" अशू का स्वर पहले से ग्रधिक ग्राश्वस्त हो गया था ग्रौर उसके मुख पर गम्भीरता ग्रा गई थी। राजन की मुस्कराहट उतनी गहरी ग्रौर ग्रडोल नहीं रही।

"मेरा मतलब था···।" राजन कहने लगा।

"तुम्हारा मतलब था···या मतलब है, या मतलब होगा···पर इनके पास तुम्हारे सारे गीत हैं।" राजेन्द्र ने उसकी बात बीच में ही काट दी।

"ग्रौर जी मैंने ग्रभी तक न कहीं छपवाए हैं ग्रौर न कहीं सुनाए हैं।" राजन के स्वर में उसकी पहली-सी स्थिरता फिर ग्रा गई।

'हाँ, हाँ, वह भी जो तुमने ग्रभी लिखे हो नहीं।" राजेन्द्र हँसने लगा।

"मैं समझती थी कि केवल कवि ही ग्रगम ग्रौर ग्रगोचर की बातें करते हैं। मुझे नहीं मालूम था···।" अशू मुस्करा दी।

"मैंने तो, अशू जी, पहले भी एक बार ग्रापको बताया था कि हम ग्रखबार वाले ग्रौर प्रेस वाले कवि नहीं होते, कहानीकार नहीं होते, उपन्यासकार नहीं होते, हम तो उनसे भी बड़े कलाकार होते हैं। हम कवियों, कहानीकारों ग्रौर उपन्यासकारों को जन्म देते हैं।" राजेन्द्र मुस्करा दिया।

"जै धरती माता! जै कलाकारों के ब्रह्मा!" ग्रौर राजन हँसता गया ग्रौर कहता गया, "ग्रौर फिर एक दिन

ऐसा आयेगा जब आप जैसे ब्रह्मा के हाथों ऐसे खिलौने बनेंगे जिनका न सिर होगा न पैर···।"

"अच्छा बच्चू, और जो मैं तुम्हारी तस्वीरें न छापता···।"

"तो आज मुझे अशू जी पहचानती भी नहीं। शायद आपके अखबार में छपी मेरी तस्वीर देखी होगी। क्यों अशू जी ! आपसे भी यह ऐसी ही···।"

"मैं तो इनकी बहुत आभारी हूँ। जब भी मैं किसी सभा या सोसायटी में गाने गई हूँ, इन्होंने अपने अखबार में कुछ झूठ सच लिख ही दिया है।"

"नहीं, नहीं—ऐसी बात तो नहीं। आप, अशू जी, आप तो मेरे झूठ सच से कहीं अच्छा गाती हैं।" राजेन्द्र के मुख की मुद्रा बदल गई, एक प्रकार की गम्भीरता उसके मुख पर आ गई, मानो अब वह कलाकारों को रचने वाला ब्रह्मा न रहा हो, बल्कि कलाकारों का पारखी बन गया हो।

"जिस तरह हर पत्र का संचालक सबसे बड़ा पारखी होता है। उँगली पर ठनका कर जिसे चाहे खरा कह दे, जिसे चाहे खोटा···।" राजन हँस पड़ा।

"अच्छा, भई, यही बात सही। आज अशू जी का नाम सारे शहर की जबान पर चढ़ गया है और कल सारे देश की जबान पर होगा, यह भविष्यवाणी है।"

"महाराज ! जरा मेरे हाथ की भी रेखा देखिये।" और राजन ने दोनों हाथ राजेन्द्र के आगे पसार दिए।

रात के पिछले पहर में जैसे प्रभात का मुँह ढल गया हो,

कमरे में हल्का-सा चाँदना हो गया। माँ ने आकर कमरे की बत्ती जला दी। बत्ती का रंग मकई के दूधिया दाने की भाँति कोमल था।

"ज्योतिषी जी ! देखिये, मेरे हाथ की रेखाओं को स्पष्ट दिखलाने के लिए स्वयं रोशनी कमरे के भीतर आ गई है।" राजन हँस दिया। राजेन्द्र और अश्रू भी हँसने लगे।

"इस तरह नहीं जिजमान जी ! पहले हाथ में कुछ भेंट रख देनी होती है...।" राजेन्द्र कह रहा था। तभी माँ ने कमरे में आकर छोटी मेज पर चाय की ट्रे रख दी।

"लीजिए राज ज्योतिषी जी, भेंट भी हाजिर है।" राजन ने मेज को राजेन्द्र के और आगे कर दिया।

"पराई ईंटों से महल नहीं बनते, राजन !" राजेन्द्र मुस्करा दिया।

"भट्टे वालों का भाड़ा चुका दिया जाए, तब तो ईंटें अपनी हो जाती हैं, राजेन्द्र बाबू !" अश्रू हँस उठी।

"तो क्या इन्होंने भाड़ा भी चुका दिया है ? मैंने तो देखा है नहीं।" राजेन्द्र ने कहा।

"किसी का चलकर आना ही तो भाड़ा चुकाना होता है।" अश्रू ने संयत स्वर से कहा।

"मैं भी तो चलकर आया हूँ।" राजेन्द्र मुस्करा दिया।

"पर यह तो पहली बार आए हैं।" अश्रू बोली।

"पर जब मैं दूसरी बार, तीसरी बार, चौथी बार आऊँगा, मेरे आने का मोल घटता जाएगा ?" राजन की आँखों में एक प्रश्न भर गया।

"मोल ? मोल तो उतने कभी नहीं रहते, या घट जाते हैं या बढ़ जाते हैं।" अशू ने कुछ सकुचाते हुए कहा। पर उसके स्वर में कंपन नहीं था।

"क्या कोई भी सिक्का स्थायी नहीं होता, अशू जी ?" राजन ने पूछा।

"सिक्के तो कभी भी स्थायी नहीं होते। सदा वस्तु ही स्थायी होती है।" अशू के स्वर में अधिक संकोच था।

"इस तरह तो वस्तु भी स्थायी नहीं होती।"

"जब तक उसकी आवश्यकता है, तब तक वस्तु स्थायी होती है।" अशू के मन में अब संकोच था या नहीं, पर उसका स्वर पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट था।

"मुझे तो इस समय चाय की आवश्यकता है, इसलिए स्थायी है। क्यों न मैं चाय ही पी लूँ।" राजेन्द्र के साथ अशू और राजन भी हँसने लगे।

"मैं चाय बनाने के लिए उठ सकती हूँ न ?" अशू ने राजन की ओर देखा।

"हाँ, लेकिन अपने बिस्तर पर बैठ कर।" और राजन ने चाय की छोटी मेज अशू के बिस्तर के पास सरका दी।

"चीनी कितनी ?" अशू ने पूछा, और वह चाय बनाती रही।

"जितनी आपने डाली है।" राजन ने कहा।

"एक पूरा चमचा, और एक आधा।" अशू ने कहा।

"बिलकुल इतनी ही। इसका मतलब यह है कि मैं भी एक सभ्य आदमी हूँ।" राजन मुस्करा दिया। राजन की

मुस्कान एक भरपूर लहर की भाँति थी ।

"दो और तीन चमचे चीनी डालने वाला क्या सभ्य नहीं होता ?" अशू का मुख गम्भीर हो गया । अशू की गम्भीरता एक गहरी नदी की गम्भीरता की भाँति दीख पड़ी ।

"हमारी सभ्यता के चलन्त मूल्य...।"

"मूल्य ?...मूल्य तो कभी भी स्थायी नहीं होते, फिर भी न जाने सदा इन्सान अपने आपको बने हुए मूल्यों पर ही क्यों तोलता है ?..."

अशू हँसने लगी । "अच्छा, कितना दूध डालूँ ? चलन्त मूल्यों के अनुसार कोई दो एक चमचे ?"

"हमारे अंगों को एक आदत-सी पड़ जाती है, फिर हमारी जीभ को उतनी ही मिठास और आँखों को वैसा ही रंग ठीक मालूम होता है ।" राजन मुस्करा दिया ।

"अब तो इस प्याले में चीनी और दूध के अलावा कविता भी घुल गयी है । लाइये अशू जी, यह हाथ वाला प्याला मुझे दे दीजिये, शायद मैं भी कवि बन जाऊँ ।" राजेन्द्र हँस पड़ा ।

"मुझे तो कविता नहीं आती, मेरे हाथ का प्याला लेकर क्या करेंगे ?" अशू ने कहा ।

"गीतकार नहीं तो शायद संगीतकार ही बन जाऊँ ।" राजेन्द्र फिर हँस दिया ।

"संगीत...संगीत को तो सदा किसी के गीत उधार लेने पड़ते हैं ।" अशू का स्वर केले के पत्ते की भाँति कोमल हो गया और थोड़ा-सा काँप उठा मानो हवा के झोंके से वह चौड़ा पत्ता हिलने लगा हो ।

"इस तरह तो गीतों को भी अपने बोल किसी से उधार लेने पड़ते हैं।" राजेन्द्र ने कहा।

"गीतों को ?"

"हाँ, उनसे जिन्हें देख कर गीतों को अपने बोल सूझते हैं।" राजन मुस्करा उठा।

"तब··· ?" अशू ने आगे कुछ नहीं कहा और चाय पीने लगी।

"आप कुछ कहने जा रही थीं।" राजन ने कहा।

अशू बोली नहीं।

"यह तो शायद न कहेंगी, पर राजन, मैं तुमसे पूछता हूँ कि इस तरह तो तुम्हारे सिर पर बहुत उधार चढ़ गये होंगे।" और राजेन्द्र हँसने लगा।

"और किसी का उधार हो या न हो, तुम्हारा उधार नहीं है।" राजन मुस्करा दिया। अशू हँसने लगी।

"दोस्त, मुझे अपनी नहीं, तुम्हारी चिन्ता है, जब लेन-दार···।" राजेन्द्र हँस दिया।

"इनके लेनदार शायद इन्हीं की तरह उदार होंगे···।" अशू मुस्करा दी।

"इनके लेनदारों से आपको क्यों सहानुभूति हो गई है, अशू जी ?" राजेन्द्र ने चाय की अन्तिम घूंट को एक बार में ही पी डाला।

"अपने जैसों के साथ हर किसी को सहानुभूति होती है।" राजन हँस पड़ा।

अशू का मुख क्षरण भर के लिये राग-रंजित हो गया।

"राजन ने आज अपने मुंह से स्वीकार किया है...।"

"मुझसे पहले मेरे गीत स्वीकार कर लेते हैं।" राजन हँस दिया।

"जब तक केतली में पानी है, मैं जरूर-जरूर पिऊँगा।" राजन ने कहा।

"या जब तक डब्बे में चाय की पत्ती है?" अशू मुस्करा दी।

"तब तक...जब तक बगीचों में चाय उगती है।" राजन ने अपने खाली प्याले में केतली की बाकी चाय डाल ली।

"नीचे की चाय...।" अशू ने आगे कुछ नहीं कहा। राजन चाय पीता रहा।

"अगर आज आपकी तबीयत ठीक होती...।" राजेन्द्र कहने लगा।

"तो?"

"तो आप राजन को कोई गीत गाकर सुनातीं।"

"पर मैं स्थायी बीमार तो नहीं हूँ। एक दो दिन में बिलकुल ठीक हो जाऊँगी।" अशू मुस्करा दी।

"आपको बीमार नहीं होना चाहिये, अशू जी!" सहज स्वभाव से राजन के मुख से निकल गया।

"होना चाहिये?...होना तो शायद क्या कुछ नहीं चाहिये।" अशू ने धीरे से कहा।

"आप अशू जी......!"

ठहरे हुए पानी की तरह बातचीत भी ठहर गई।

फिर पहली बात अशू के मुख से निकली, "क्या कहने लगे थे, राजन!"

"शायद कहना नहीं चाहिए ।"

"आपको कहना नहीं चाहिये, मुझे बीमार नहीं होना चाहिये । आप इस 'चाहिये' और 'नहीं चाहिये' में क्यों उलझ गये हैं ?"

"असल में आपसे बात करने से पहले सोचना पड़ा है ।"

"इसका मतलब यह कि मुझसे की गई बात साफ और स्वाभाविक नहीं हो सकती । उस पर 'ठीक' या 'ठीक नहीं' की मुहर लगी हुई होगी और विचार का बोझ पड़ा हुआ होगा ।"

"यह नहीं, अशू जी, पर वस्तु के अनुसार ही मूल्य देना पड़ता है ।"

"फिर तो कल आपको यह सौदा मँहगा मालूम होने लगेगा ।" कहकर अशू मुस्करा दी ।

"सीपियों से खेल लेना बड़ा आसान और बड़ा सस्ता है । पर सुन्दरता में भेद होते हैं । किसी सुन्दर वस्तु को देखकर खेल लेने को जी करता है, और किसी के पास बैठ कर बात करने को···माफ करना, अशू जी ! अगर मैं यह कह दूं कि आप सुन्दरता का दूसरा भेद हैं···।" राजन कह गया । उसे लगा, वह बहुत कुछ कह गया है ।

"तो फिर बात कहते-कहते आप चुप क्यों हो गये थे ?"

"एक प्रश्न मेरे भीतर उठा था, पर वह इतना निजी है, मैंने सोचा मुझे नहीं कहना चाहिये ।"

"मेरा निजी कुछ भी रहस्य भरा नहीं है । ऐसा साफ है जैसे एक और एक दो ।"

"राजेन्द्र ने मुझे और कुछ भी नहीं बताया, सिर्फ यही कि आप गाती हैं, इतना तो मैं अखबारों-पत्रों से भी जानता था···।"

"अगर और जानना चाहें तो मैं बता दूंगी।" अशू हँसने लगी।

"···राजेन्द्र ने मुझे बताया था कि वह कोशिश कर रहा है कि आप किसी फिल्म के पर्दे के पीछे अपने गीत गाएँ।"

"इनकी बड़ी कृपा है। पर एक तो अभी मुझे और अभ्यास की आवश्यकता है, दूसरे अभी मैं इस शहर में कुछ बरस और रहना चाहती हूँ।"

"आप···।"

"मेरी कहानी तो बिलकुल सीधी है, राजन बाबू! एक मैं हूँ, और मेरी बहन है नीता, आठ बरस की। पहले हमें हमारे पिता जी ने पाला। फिर नीता साढ़े तीन बरस की थी, जब हमारी माता जी का देहान्त हुआ···और अब मेरी बारी आ गयी है अपने आपको और नीता को पालने की···यह घर, जब मैं छोटी-सी थी, मेरे पिता जी ने मेरे नाम से खरीदा था। मेरे चाचा जी ने कहा कि यह मकान मैं उनके नाम लिख दूं तो वह हमारे गुजारे का भार अपने ऊपर ले सकते हैं।

"पर मैंने यह नहीं किया। मैं जानती थी कि यह भार उन्हें सदा भार ही महसूस होता रहेगा और मैं यह भी सोचती थी कि जब तक नीता छोटी है, उसकी तरफ से सौदा करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है···आखिर उसका भी तो घर पर

उतना ही हक है···। तो···बस मैं गाती हूँ। मेरा, नीता का और माँ का गुजारा हो जाता है।"

"आप अपनी दासी को माँ कहती हैं।" राजेन्द्र ने राजन को बताया।

"उसको तो मेरी माँ भी माँ कहती थी।" अशू मुस्करा दी, "वह पहले भी मुझे अशू बीबी कहती थी, अब भी 'अशू बीबी' कहती है। पहले कभी 'छोटी बीबी' भी कह देती थी, पर अब क्योंकि मुझसे बड़ी बीबी घर में कोई नहीं है, वह मुझे निरा 'बीबी' कहती है।"

"चाचा जी के इस 'सौदे' पर मुझे बड़ी शर्म आ रही है।" राजन ने कहा।

"सौदे तो फिर सौदे ही हैं···हमारी दुनिया में तो होते ही सिर्फ सौदे हैं। हमारे सम्बन्ध, हमारी मित्रता, हमारी रोटी···मैं भी सौदा करती हूँ, संगीत बेचती हूँ, रोटी खाती हूँ। एक माँ भी शायद अपने पुत्र को पालने में एक सौदा करती है कि जब उसकी जवानी बीत जायेगी, उसका पुत्र जवान हो जायगा, फिर वह माँ को पालेगा···कभी किसी को यह सौदा महँगा पड़ता है, कभी सस्ता···।" अशू ने कहा।

"आप···।" राजन कुछ कहते-कहते रुक गया।

"मेरा और कोई सौदा करने को जी नहीं करता," अशू फिर हँस दी, "अभी संगीतवाला सौदा ही काफी है।"

"मुझे पूरी तरह मालूम नहीं आप कैसा गाती हैं। पर राजेन्द्र ने ठीक ही कहा होगा। आप फिल्मों में परदे के पीछे···।"

"हाँ, वह सौदा, इन छोटे-छोटे सौदों से बहुत अच्छा है, इन संगीत सभाओं से मैं थक चुकी हूँ।"

"फिल्म के परदे पर क्यों नहीं ?..."

"पर उसमें मेरी रुचि नहीं है, राजन बाबू ! मैं सुरों में ही खो जाना चाहती हूँ। इनमें बड़ी विशालता है, बड़ी गंभीरता, इनकी थाह नहीं मिलती। और काम मैं क्या करूँगी।" अशू के मुख पर एक आभा दौड़ गई, मानो लय और सुर के शब्दों ने उसके दुबले-पतले और गोरे अंगों पर एक रंग-सा छिड़क दिया हो।

"इनका विचार है कि जब नीता बोर्डिंग में रहने योग्य हो जाए, तब यह इस शहर को छोड़कर कहीं और काम करेगी।" राजेन्द्र ने कहा।

माँ कमरे में आई और एक प्रश्नभरी दृष्टि से उसने अशू बीबी को देखा।

"कितने बजे हैं ?" अशू ने पूछा।

"आठ बजने वाले हैं।" राजेन्द्र ने अपनी घड़ी देख कर कहा।

"माँ, जाकर नीता को ले आओ," अशू ने कहा, "मैं खाऊँगी कुछ नहीं, माँ, नीता अपनी सहेली के जन्म-दिन से इतना खाकर आएगी कि फिर खाना नहीं खाएगी।"

माँ वापस लौट रही थी, पर अशू की बात सुन कर खड़ी हो गई, पहले अशू की ओर देखती रही, फिर राजेन्द्र बाबू की ओर।

"माँ ·।" अशू ने कहा।

"माँ ने उसकी ओर नहीं देखा। राजेन्द्र बाबू से बोली, "आप बीबी से कुछ नहीं कहते। यह इसी तरह रोटी नहीं खाती, दूध नहीं पीती। भला चाय पीने से सिर का दर्द दूर होगा?"

अशू खिलखिला कर हँस पड़ी, "अच्छा माँ, आज रात चाय की जगह कॉफी बना देना।"

राजन और राजेन्द्र बाबू दोनों हंस पड़े। माँ के गुस्से में भी थोड़ी-सी हँसी मिल गयी, और वह नीता को लेने चली गई।

"सच, अशू जी, आपकी सेहत ठीक होगी तो काम भी कर सकेंगी।" राजन ने कहा, "आपके गले में स्वर भी है, आपके गले में लय भी है।"

"कोई जवाब नहीं है अशू का···पर ऐसा होना शायद स्वाभाविक ही है। गायकी इनका खानदानी पे···ए···।" राजेन्द्र ने कहा और राजन के मुख की ओर देखा।

राजन के मन में एकाएक अनेक विचार उभर आए। उसने अपनी आँखों में आते हुए आश्चर्य को लौटा दिया। उसके मन पर केवल एक विचार रह गया था। अशू को रचने में कौन जाने ब्रह्मा के हाथ भी थक गए होंगे। किस तरह वह तराशता रहा होगा, किस तरह उसने लकीरें बनाईं और मिटाई होंगी···उसके परिश्रम को कितना सम्भाल कर रखना चाहिए।

अपने विचार के बोझ से राजन की पलकें नीची हो गईं।

"इन्हें आराम करने दो, राजेन्द्र! हमें अब चलना चाहिये।" राजन ने कहा और कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"इतना एहसान किसी पर नहीं चढ़ाना चाहिए।" अशू ने कहा।

"एहसान ?"

"वैसे आप जाना चाहें तो और बात है। पर मुझ पर मेरे आराम करने का भार क्यों डालते हैं ?"

"आपकी सेहत की आपसे कहीं अधिक किसी और को आवश्यकता है।" राजन ने कहा।

अशू ने कुछ नहीं कहा, केवल एक बार राजन की ओर देखा।

"नीता को," राजन की पलकें नीची हो गईं। अशू ने सोचा, अब राजन के मुख पर वह भरवाँ, गहरी और अडोल सी मुस्कान आएगी जो न जाने कितने बरसों से राजन के ओठों के साथ रची हुई थी; पर वह नहीं आई। राजन की पलकें झुकी रहीं। केवल उसके हाथ हिले और उसने अशू को प्रणाम किया।

"अच्छा, अशू जी !" राजेन्द्र की आवाज आई, और वह दोनों चले गये।

अशू के हाथों में गति आ गई और वह चादर को हटा कर बिस्तर पर उठ कर बैठ गई। वह नहीं समझ सकी कि वह क्यों उठी है, वह क्या करेगी···फिर आहिस्ता से उसके पाँव उस कमरे की ओर चले गए, उसके अपने कमरे की ओर, जिसमें बड़ी दरी के ऊपर लाल रंग का ईरानी कालीन बिछा हुआ था, जिस पर बारीक सफेद कपड़े से ढका हुआ उसका तानपुरा पड़ा था। उसने कमरे की बत्ती जलाई।

दाएँ हाथ के पोरवों से उसने पहले तार को छेड़ा जो पंचम में मिला हुआ था, फिर उसने जोड़ के दोनों तार सा में मिलाए और चौथे खरज के तार को निचले सप्तक सा में मिला लिया।

जैसे बादल के एक टुकड़े में से छोटी-छोटी बूंदे गिरती हैं, अशू के गले से भूपाली के सुर फूट निकले…बूंदे गिरती रहीं…

अशू को पता नहीं चला वह किस समय निश्चल बैठ गई, और किस समय उसने तानपुरे को अपने घुटनों के सहारे टिका दिया। उसके दाएँ हाथ के बिचले तीन पोरवों में और तानपुरे के चारों तारों में एक लय बँध गई थी। स्वर उसके गले से निकलते और लय में लीन हो जाते। बूंदें मेंह बन गई थीं।

वह और कुछ नहीं गा रही थी, केवल भूपाली के स्वर। उसकी आँखें झूम उठीं। हाथ के तीन पोर, तानपुरे के चार तार और भूपाली के पाँच स्वर…उसकी आत्मा को लपेटते गए।

बूंदें पड़ती रहीं। मेंह बरसता रहा। अशू की आत्मा भींजती रही।

३

सात स्वर

अशू सोच रही थी, सात स्वर कितने विशाल हैं। राग और अनुराग, जोश और घृणा, करुण और वैराग—इन सब भावों का चित्रण करते हैं। संसार भर की दशा ये अपने आप में समेट लेते हैं। इन स्वरों का मेघ बादलों को बाँध सकता है। इन स्वरों का दीपक असंख्य ज्योति जगा सकता है। पर ये कितने नियमबद्ध हैं। नियम ही इनका प्राण है। नियम ही इनका आकार है। पहले ये अपने आपको समय में बाँध देते हैं, फिर यह समय को बाँध सकते हैं, और केवल बाँधे ही नहीं सकते, ये समय को पलट सकते हैं···सात स्वर···सात स्वर···सात स्वर···पर इनका जीवन कितना कठोर है। कोई भी योग इनसे अधिक कठोर नहीं, कोई साधना इनसे बड़ी नहीं, कोई भी तपस्या इनसे कठिन नहीं।

अशू सोचने लगी। आज उसके मन के सात स्वर अपने नियम का उल्लंघन कर रहे थे। समय उस पर भारी बोझ बना हुआ था और उसका मन उस बोझ को वहन करने में

आज समर्थ नहीं था ।

कल राजेन्द्र कह रहा था, "मैं मानता हूँ अशू जी का कोई जवाब नहीं। इनके गले में सुर है, इनके गले में लय है। पर ऐसा होना स्वाभाविक ही है क्योंकि गायकी इनका खानदानी पेशा है।" और राजेन्द्र मुस्करा दिया था। राजन का हैरान होना उसे अच्छा लगा था और शायद उसको और भी अच्छा लगता अगर मेरे मुँह पर घबराहट होती···पर वह नहीं थी, उस समय बिलकुल नहीं थी, शायद अब भले कुछ दीखती हो । पर यह घबराहट नहीं है,···फिर भी घबराहट जैसी ही कोई चीज है । मेरा मन···अशू ने अपने विचारों को समेट लिया।"

"माँ···माँ···तुम्हारे साहस की मैं सराहना करती हूँ !" अशू ने अपना माथा मेज के किनारे के साथ टिका दिया। अशू के संगीत के कमरे में केवल एक ही छोटी सी मेज थी, कश्मीरी कारीगरों के हाथों की बनाई हुई, जिसके चारों पायों पर तराश कर चिनार के लम्बे पेड़ बने हुए थे और इन चारों पायों को चिनार के चौड़े पत्तों से जोड़ कर कारीगरों ने उसे एक मेज की शक्ल दी थी । अशू ने उस पर अपनी माँ का चित्र रखा था ।

और फिर मानो प्रणाम करते ही अशू का मन अपनी माँ की असीस पा गया हो, उसने झुके हुए माथे को ऊँचा करके अपनी माँ के मुख की ओर देखा ।

"कितना शान्त, कितना सुन्दर और कितना गम्भीर मुख था मेरी माँ का," अशू के मन में आया । "मेघों की भाँति

गहरे काले बाल थे मेरी माँ के । मानो सावन की घटा चढ़ आई हो ! लम्बे और खुले हुए बालों की एक घटा माँ की पीठ पर चढ़ी हुई थी । और माँ के गले में पड़ी हुई चुनरी के सितारे मानो आज भी उसी तरह चमक रहे हों । उसकी उँगलियाँ तानपुरे के तारों पर टिकी हुई थीं, बीच की उँगली जरा सी उठी हुई थी, मानो अभी वह जोड़ के दूसरे तार पर चली जायेगी और फिर उन तारों में से एक संगीत जाग उठेगा।...माँ की आँखें, मानो काँगड़ा शैली के किसी चित्रकार ने बैठ कर बनाई हों।" अपने विचारों से अशू को एक प्रकार का आनन्द मिला । "सभी शैलियों का वह चित्रकार क्या-क्या बना देता है !" अशू मुस्करा दी ।

"खानदानी पेशा...।" फिर राजेन्द्र की बात मानो कनखजूरे के पैरों की भाँति उसके शरीर पर चढ़ गई हो । अशू ने अपने आप को झकझोरा, पर उसे लगा जैसे फिर उसके मन के स्वर बिखर गये हों ।

क्या ? और क्यों ? दो प्रश्न अशू के मन को विकल करने लगे । "मुझे रोटी चाहिये, नीता को रोटी चाहिये, और मैं किसी सभा में गाकर अपनी रोटी कमा लेती हूँ तब... पर यह कितना कठिन है । क्यों कठिन है ? संगीत सुननेवाले केवल संगीत ही क्यों नहीं सुनते हैं !"...और कई भावों ने एक साथ अशू के मन में खलबली मचा दी ।

"और, माँ ! तुमने इन सुननेवालों की सब बातों पर इनकार कर दिया, तुम कितनी बहादुर थीं, माँ, माँ ! मैं...मैं भी बहादुर बनूंगी, माँ !" और अशू ने ममता से चित्र को इस

तरह अपनी बाँहों में ले लिया मानो उसे अपनी माँ का आलिंगन मिल गया हो ।

फिर जैसे उसका जी न भरा हो उसने मेज पर बने चिनार के पत्तों को कुछ इस तरह हिलाया कि उनके भीतर बना हुआ एक खाना दीखने लगा । अशू ने हाथ डाल कर उसमें रखी हुई एक पुस्तक जैसी कोई चीज निकाली और फिर, मानो अत्यन्त ममत्व की भावना से भरकर, उसे अपने दाएँ गाल से लगा लिया ।

फिर उसने उसके पन्ने पलटे ।

"मेरी अशू ! मेरी नीता !

"मेरी आत्मा से बनी हुई दो आत्माएँ ! तुम बहुत छोटी हो, और मेरी बातें बहुत बड़ी हैं । मैं किस तरह तुमसे यह बातें करूँ ? मैं कब तुमसे यह बातें करूँ ?"

"तुम मेरी छोटी-सी दुनिया हो, बहुत छोटी-सी ! बस तुम और तुम्हारे पिता जी ! असली दुनिया शायद इतनी ही होती है । शायद इससे बड़ी भी होती हो, पर मेरे हिस्से में यही दुनिया आई थी । मेरे मन में जरा भी गिला नहीं, मैंने स्वयं यह दुनिया चुनी है, मैंने स्वयं यह दुनिया बनायी है, बड़ी छोटी-सी दुनिया !

"यह दुनिया न जाने कब से मेरे सपनों में बसी हुई थी । उसके बनाने के किए मैंने अपना सर्वस्व लगा दिया, अपनी सारी आयु सारी कीर्त्ति··पर यह तो बहुत छोटी चीजें हैं । न जाने कौन से कर्मों के फल से मुझे मेरी दुनिया मिल गई है । मेरे मन में पूर्ण शान्ति है, पूर्ण संतोष, पूर्ण सुख ।···

सुख और शान्ति मन की अवस्था है और मैं इस अवस्था में जी रही हूँ। पर इस अवस्था को प्राप्त करना बड़ा कठिन है, घोर तपस्या की भाँति कठिन, दंड-योग की भाँति कठोर।

"मुझे योग की इस साधना में से गुजरना पड़ा है। मुझे इसकी किसी भी कठोरता का गिला नहीं, बल्कि मैं सोचती हूँ, मैं सारे ही मूल्य इस अवस्था पर न्योछावर कर सकती हूँ, और जो कुछ न्योछावर किया है, वह कुछ भी नहीं है···

"पर जब मैं तुम्हारे नन्हें-नन्हें मुख देखती हूँ, सोचती हूँ, शायद तुम्हें भी, फूल की पत्तियों को भी, हवा के सर्द और गर्म झोंके सहने पड़ जायँ। वैसे मैं चाहती हूँ कि दुनियाँ की बहारें तुम्हारे कदमों में बिछी रहें। शायद हर माँ यह चाहती है, फिर मुझ जैसी माँ, जिसे दुनियाँ यह हक नहीं देना चाहती थी और जिसने घुल-घुल के दुनिया के हाथों से अपना यह हक छीना है!

"मैं एक माँ हूँ, मैं एक पत्नी हूँ, यह सोचकर मैं झूम-झूम उठती हूँ, वृक्ष से लिपटी हुई बेल की भाँति झूम उठती हूँ। जिसे मैं प्रेम करती हूँ उसकी मैं पत्नी हूँ, जिसे मैं प्रेम करती हूँ उसके बच्चों की माँ हूँ। शायद कोई भी स्त्री इससे अधिक कुछ नहीं चाहती, कम से कम मैं नहीं चाहती।

"पर यह सब मेरे भाग्य में नहीं था। मैंने अपनी मेहनत से अपनी मंज़िल बनाई है। या इसे यों कह लो कि यह सब मेरे भाग्य में तो था पर यह दुनिया मुझे अपने भाग्य का बदा लेने नहीं देती थी, और अन्त में मेरे भाग्य का बदा मुझे मिल गया।

"यों तो कानून भी दुनियाँ ने बनाया है, पर कानून का दिल दुनियाँ से बड़ा है । अभी तक दुनिया मुझे अपने पति की पत्नी और अपने बच्चों की माँ नहीं मान सकी, पर कानून मुझे पत्नी भी मानता है और माँ भी । मैं कानून की आभारी हूँ ।

"नीता ! तू तो अभी बिलकुल छोटी है । पर अशू ! तू थोड़े से बरसों में यह पत्र पढ़ने योग्य हो जायेगी । न जाने तुझे यह सब कुछ कैसा लगेगा । पर तेरी नाड़ियो में मेरा अपना लहू और मेरे अपने प्यार का लहू है, जिस प्यार के लिए मैंने अपनी दुनियाँ ही बदल दी है, और मुझे विश्वास होता है कि यह सब कुछ तुझको स्वीकार होगा ।

"पहले मेरी दुनियाँ और थी । मेरे बाप-दादा एक गाँव माणकआले के शाह थे और इसलिए मेरा विवाह भी पास के गाँव के शाहों के एक घर में हुआ था । जब मैं नौ-दस बरस की हुई तो मुझे ऐसा याद है कि मेरी सहेलियाँ कहा करती थीं, जब तू बारहवें बरस में पैर रखेगी तब तेरा गौना होगा । पर मैंने अभी बारहवें बरस में पैर नहीं रखा था और न ही अभी मेरे गौने का समय आया था कि एक दिन हमारे घर के सारे जने रोने लगे । लोग कहते थे कि मैं विधवा हो गई थी···।···विवाह का समय मेरे होश सम्भालने से पहले निकल गया था और गौना मैंने कभी देखा नहीं । पर विधवापन मैंने अच्छी तरह देखा है···जी भर कर देखा है···।

"इसके बाद मेरी कहानी एक साधारण कहानी होते हुए

भी साधारण नहीं बन सकी । कुदरत के नियमों के अनुसार एक लड़की के बचपन में जब जवानी का पहला कदम पड़ता है, 'प्रेम' उसके भीतर से, ईश्वर की थाती रखे हुए बीज की भाँति, एक लता बनकर फूट पड़ता है । हर मुल्क की, हर नस्ल की, और हर जाति की लड़की को अवश्य ही ऐसे ही होता है । लड़की आखिर लड़की है, चाहे वह राजमहलों के रेशमी पर्दों में पले, चाहे मिट्टी से लिपी हुई छत के नीचे !

"कितना कुदरती हक है एक लड़की का—हर मुल्क की, हर नस्ल की और हर जाति की लड़की का । पर अगर हमारे देश की एक विधवा बालिका का यह हक लेने को जी कर आवे…समाज हँस देता है !

"मैं यह कभी नहीं मान सकती कि कभी लड़की में यह मूल भावना जागी ही न हो । यह भावना तो उतना ही बड़ा सच है जितना बड़ा सच उसका 'लड़की' होना है । हाँ, यह और बात है कि उसकी आत्मा कुछ ऐसे घुट गई हो, कि उसे अपनी इस भावना का कभी ज्ञान ही न हुआ हो । पर यह ज्ञान अचेतन मन में तो फिर भी रहता है । यह भावना एक विचार के रूप में उसके मन में पड़ी रहती है । उसकी मनोवृत्तियों पर विवशता के रंग कई बार इस तरह चढ़ जाते हैं कि इस भावना के अस्तित्व से भी कोई चाहे तो इनकार कर सकता है । पर इसका अस्तित्व छुप सकता है, मिट नहीं सकता ।

"एक चिनगारी बनकर मेरे हृदय में कुछ पड़ गया था, मेरे जीवन में एक सुलगन उत्पन्न हो गई थी, मेरे दिल और

दिमाग पर यह छा गया था कि इस चिनगारी से किसी दिन कोई जोत जग उठेगी जिसके प्रकाश में मैं वह मुखड़ा देखूँगी जिसे देखने के लिए मेरी जिन्दगी की आँखें तरस गई थीं, वह मुखड़ा जिसे देखकर सब भटकन समाप्त हो जाती हैं, 'खोज' के पैर थम जाते हैं, और राही अपनी मंजिल पा लेता है।

"मैं कभी किसी से कुछ कहती नहीं थी, फिर भी मेरी माँ मेरी इस जगी हुई चेतना से खुश नहीं थी। कभी-कभी वह मुझे बड़ी सहमी हुई आँखों से देखती थी और फिर मेरे मन में, मेरे चारों ओर, कई आँखें आ जाती थीं जिससे मुझे डर लगता था।

"माँ कहती थी यह संस्कार होते हैं। और फिर मेरी माँ को याद आता कि बरस हुए उसको एक बच्चे की उम्मीद थी और जब तरह-तरह की चीजें खाने को उसका जी किया तो उसके दिल में आया कि एक कटोरी भर कर भुना हुआ माँस खाये। उसने अपने जीवन में माँस कभी नहीं खाया था। न जाने क्यों उसे लगता था कि उसके भीतर से एक प्रेरणा सी होती है, एक भड़क-सी उठती है और जब डरते-डरते उसने मेरे पिता को बताया, वह आग-बबूला हो गये। "यह बच्चा चाहे लड़का ही क्यों न हो, मुझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं, यह तो जन्म से ही…राक्षस है।"…मेरे पिता ने कहा था। माँ कहा करती थी उसने लाख तोड़ किये पर उसका जी उसके बस में नहीं आया और एक दिन जब पड़ोसियों ने माँस भूना तो माँ ने यह कह कर कि हमारे यहाँ कोई मेहमान

आया है, उसके लिए एक कटोरी माँस चाहिए, पड़ोसियों से एक कटोरी माँस ले लिया। माँ ने खाया तो चोरी से, पर जब उसके लड़का हुआ और दो महीने का होकर मर गया तो एक दिन रोकर उसने यह बात मेरे पिता को बता दी। "अच्छा हुआ वह चला गया, वह राक्षस था, राक्षस···।" पिता जी ने कहा। माँ कई बार इस बात को याद करती और कहा करती, यह संस्कार होते हैं···संस्कार···।

"मेरे संस्कार भी न जाने कैसे थे। एक दिन मेरे जीवन में ऐसा आया जब मुझे लगा कि आज मेरे साथ कुछ 'अलौकिक' सा हो गया है, मेरे मन की चिनगारी में से मानो एक दीपक जग उठा, मेरी आँखों में एक लौ-सी जग उठी। उस दिन हमारे पड़ोसियों के यहाँ शहर में पढ़ने वाले उनके लड़के का एक मित्र छुट्टियों में रहने के लिए आया था। जब वह सन्ध्या समय वायलिन बजाता, उड़ते हुए पक्षियों पर भी मानो जादू-सा हो जाता···मुझे ऐसा लगता था मानो मेरे गले में साँस रुक जायगी।

"वह मेरी जिन्दगी का 'अलौकिक' था पर उसे मैं बादलों में चमकने वाली बिजली की एक लकीर नहीं बनाना चाहती थी जोकि एक बार धरती और आकाश को जगमग तो कर देती है, पर फिर जिसे आजीवन आकाश के खाली हाथ टटोलते रहते हैं, पर छू नहीं सकते। मैं तो उस 'अलौकिक' के स्पर्श से जगाई हुई जोत को अपनी सम्पूर्ण आयु का प्रकाश बना लेना चाहती थी जिसकी दिव्य चमक के बाद फिर मेरी दुनिया अँधेरी न हो जाये, बल्कि जिसके पार्थिव

स्पर्श से मेरी मंजिल का पथ आलोकित हो जाये।

"मेरा भाग्य जाग उठा और वह 'अलौकिक' मेरे जीवन का सत्य हो गया। मैं भी हैरान थी, मेरी माँ भी, और दुनिया भी। पर हमारी हैरानी में बड़ा अन्तर था। मैं खुश थी, मेरी माँ खुश नहीं थी, हमारी हैरानी में बस इतना ही अन्तर था, पर दुनिया के माथे पर गुस्से के सात बल पड़े हुए थे।

"मेरा 'प्यार' मेरा 'अलौकिक' एक ओर खड़ा था, मैं उसके साथ सहमी हुई खड़ी थी, और हमारे सामने सारी दुनिया के मुख क्रोध से भरे हुए थे।

"मैं बालिग थी। कानून ने हमें शरण दी, दुनिया के माथे को, जिस पर गुस्से से बल पड़े हुए थे, उसने न देखा, और हमारे विवाह पर अपना अंगूठा लगा दिया। मैं उसकी हो गई जिसकी मैं होना चाहती थी।

'हमारी दुनिया बस गई। दो बुतों की दुनिया...।"

पढ़ते-पढ़ते अशू का सिर झुक गया और उसका माथा पुस्तक पर टिक गया। वह जब भी पढ़ती थी उसे ऐसे ही हो जाता था। कभी वह उस पुस्तक को आरम्भ से पढ़ती थी, कभी पीछे से, कभी बीच में से ही, और कभी-कभी ऐसे जैसे कोई अपनी पूज्य पुस्तक में से केवल एक वाक्य ले लेता है, किसी अध्याय का एक श्लोक या एक मन्त्र पढ़ लेता है या केवल अक्षरों को देखकर अपना माथा नवा लेता है।

"बीबी" अशू की पीठ के पीछे से माँ की आवाज आयी। अशू ने शायद उसे सुना नहीं। "अशू..." माँ ने अशू के कंधे

पर अपना बूढ़ा काँपता हुआ हाथ रख दिया। "आज फिर तू इसे खोल बैठी है।" माँ ने कहा।

"माँ···।" अश्रू ने पुस्तक पर से अपना माथा उठा लिया। एक स्वाभाविक मुस्कान उसके मुख पर आ गई थी। माँ को उसने अपने पास कालीन पर बिठा लिया।

"यह ले, रख देती हूँ···।" अश्रू ने पुस्तक उसी तरह मेज के खाने में रख दी और चिनार के पत्तों को उसी तरह जोड़ दिया। लकड़ी के बने हुए पत्ते उसी तरह मेज की सतह मालूम होने लगे। अश्रू ने अपनी माँ का चित्र धीरे से मेज पर टिका दिया और फिर तानपुरा हाथ में लेकर बोली :

"मेरी माँ भी यही तानपुरा बजाती थी न ?"

"हाँ···।"

"माँ, तू बड़ी अच्छी है।" अश्रू ने अपनी बुढ़िया दासी को आलिंगन में भर लिया।

"तू मेरी माँ को प्यार करती थी न···।" अश्रू ने कहा।

"अश्रू···!" माँ का गला कुछ भर आया।

"तुझे मेरी माँ भी माँ कहती थी, और मैं भी···।" अश्रू हँसने लगी।

"पर उनके राज में तू कितनी सुखी थी। वह तुझे फली भी न तोड़ने देती थी। बस, तू मेरे साथ खेल लिया करती थी···।"

अश्रू ने अपना सिर माँ की टाँगों पर रख दिया, "मुझे याद है, जब तक तू मेरे पास नहीं लेटती थी, मैं सोती नहीं थी और फिर तू मुझ सोती हुई के पास से उठकर अपनी

खाट पर चली जाती थी। माँ, अब तो मैंने तुझे तंग कर डाला है। तू भी मेरी माँ है न…।"

"तो माँ से कोई ऐसे कहा करता होगा…।" माँ की आँखों में आँसू आ गये।

"अब तू ही सारा खाना पकाती है, घर को भी साफ करती है। माँ, हम इतने गरीब तो नहीं हैं कि…।"

"पर हम पराये आदमी को घर में रख कर क्या करेंगे, अशू ! मुझसे ज्यादा काम तो तेरे ऊपर पड़ गया है। मैं तो खर्च करना ही जानती हूँ, पर तू…।"

"यह तो बहुत छोटा-सा काम है, माँ। अपनी रोटी तो हर एक को कमा सकनी चाहिए। पर माँ…।" अशू चुप हो गयी।

"क्या अशू…।" माँ ने कहा। अशू जब लाड़ में होती थी, माँ उसे 'अशू' या 'अशू बच्ची' कहा करती थी। वैसे वह 'अशू बीबी' कहती थी, और जब घर में कोई बाहर के लोग आए हुए हों तब 'बीबी' या 'बीबी जी' कह कर बुलाती थी।

"यही कह रही थी माँ, कि लोग नाच और संगीत को बुरा क्यों समझते हैं। यह तो हिन्दुस्तान की पुरातन कलाएँ हैं।"

"तेरी माँ भी यही सोचती थी, अशू !"

"हमारे मन्दिर भी इस कला का आदर करते थे। शाही दरबारों में भी इस कला का मान था। पर माँ…अच्छा, इस बात को जाने दो माँ ! लोगों ने कला का निरादर भी

तो बहुत किया है, इसीलिए आज कला लोगों का निरादर कर रहा है।" अश्रू कुछ भावुक हो गयी । फिर ठहर कर बोली : "अगर किसी के पास कला है तो यह तो बड़े गौरव की बात है माँ, है न ?"

"दुनियाँ नहीं समझती अश्रू ! तेरी माँ का भला क्या दोष था ? तेरे पिता से उनके माँ-बाप ने कोई वास्ता नहीं रखा, भला उनका क्या दोष था ?"

"तू मत रो माँ, बहुत रो चुकी है ! भला माँ, मेरी माँ से कैसे तेरा प्यार हो गया ?" अश्रू के स्वर में स्नेह भर आया।

"मुझे भी तो इस दुनिया में कोई नहीं चाहता था···।"

"माँ, तेरे बेटा कोई नहीं था ?"

"नहीं, अश्रू !"

"और कोई ?"

"दुखी को दुखी पहचानता है ! तुम बच्चों को पालने के लिए तेरी माँ को किसी की जरूरत थी, और मैं अकेली थी, बेआसरे···।"

"अच्छा, तू रो मत माँ ! तू रोती क्यों है···?"

"अगर तेरी माँ जीती होती या तेरा बाप ही जीता होता···।" माँ का गला रुंध गया ।

"फिर मैं कभी भी किसी सभा में गाने न जाती ।"

"तुझे गाना अच्छा नहीं लगता, अश्रू ?"

"गाना तो अच्छा लगता है, माँ, लेकिन किसी के घर जाकर नहीं और फिर, गाकर किसी से पैसे लेने···मुझे यह

अच्छा नहीं लगता। गाना वैसे तो अच्छा लगता है, पर यह पैसे देने वाले उसे अच्छा नहीं लगने देते।" कहते-कहते जैसे अशू का साँस चढ़ गया। "जब मेरे पास बहुत पैसे हो जायेंगे फिर मैं गाने के लिए कभी किसी के पास नहीं जाऊँगी, फिर हम नीता का ब्याह रचायेंगे, माँ!" अशू का मन मानो एक चाव से भर गया हो।

"नीता से पहले उसकी बहन का ब्याह करेंगे…।" माँ हँस दी।

"नहीं, माँ!" अशू हँस नहीं सकी। "अब नीता कुछ सयानी हो गयी है, इसे बोर्डिंग में कर दें और हम बम्बई चलें। मेरा अब यहाँ दिल्ली में रहने को मन नहीं करता।"

"क्यों अशू? यह तेरा अपना मकान है, तेरी माँ का मकान, तेरे पिता का मकान। इसीलिए यह मकान तूने अपने चाचा को नहीं दिया था।"

"चाचा को तो न मैंने कभी पहले देखा था, और न बाद में देखा। न जाने तब कैसे एक बार आ गया था, शायद मकान लेने के लिए…उसकी बात छोड़ो, माँ! ऐसे ही कह रही थी मैं, फिल्मों के कुछ गाने गा लूं तो फिर मुझे यह छोटे-छोटे काम न करने पड़ेंगे…।" अशू जैसे ऊहापोह में पड़ गयी हो। माँ उसके माथे को धीरे-धीरे थपकने लगी। "कितना बोझ उसके सुकुमार कंधों पर पड़ गया।" माँ सोचती रही…कुछ देर बाद उसने जाना कि अशू उसकी गोदी में सो गई थी।

"मेरी माँ नाक में तिल्ली भी तो पहना करती थी न…।"

अश्रू मानो सोते-सोते बड़बड़ा उठी हो, और फिर उठकर अपनी माँ के चित्र को देखने लगी।

"तेरे पिता को उसकी नाक में पड़ी हुई तिल्ली बहुत भाती थी।"

'माँ, वह तुझसे अपनी सारी बातें कर लेती थी ?" अश्रू हँस दी।

"और उसके पास था कौन, अश्रू···!"

"तो फिर माँ, उसने यह पुस्तक कब लिखी ?"

"कई बार लिखा करती थी। देख न, इनके ऊपर कई तारीखें पड़ी हुई हैं।"

"हाँ, एक डायरी की तरह।"

"पहले-पहल तो तेरी माँ को बहुत बुरे दिन देखने पड़े थे। तेरा पिता तो अभी कॉलिज में पढ़ता था। काम कोई था नहीं। माँ-बाप ने घर में घुसने नहीं दिया···।"

"फिर, माँ, उन्होंने ब्याह कैसे किया ?"

"ब्याह तो उन्होंने कचहरी में कर लिया था।"

"फिर ?"

"कॉलिज के जमाने में जब तेरा पिता वायलिन सीखता था, एक बुड्ढा मीरासी उसके साथ तबला बजाया करता था। उस बिचारे ने दोनों को अपने घर ठौर दी। तेरी माँ रात के समय तेरे पिता से पढ़ा करती थी। दिन में जब वह कॉलिज चला जाता था, वह उस मीरासी से गाना सीखा करती थी। बड़ी कठिनाई से उन्होंने अपने दिन काटे। पर तेरी माँ के दिल में पछतावा नहीं आया···।"

"तब लाहौर रहते थे न, माँ ?"

"हाँ, लाहौर ।"

"फिर, माँ ?"

"किसी नाचने वाली के घर भी वह मीरासी तबला बजाया करता था । तेरी माँ बताया करती थी कि एक दिन उसने तबला बजाते हुए नाचनेवाली से जिक्र किया कि किस तरह वह दिन में एक लड़की को गाना सिखाता है और तेरी माँ की आवाज की बहुत तारीफ की ।"

"फिर, माँ ?"

"वह नाचनेवाली, कहते हैं, एक दिन तेरी माँ के घर आ गई और उसने तेरी माँ का गाना सुना । उस नाचनेवाली के जी में क्या आया कि फिर वह दूसरे-तीसरे आ जाती और तेरी माँ को गाना सिखाती···

"तेरे पिता को नीचा दिखाने के लिए उसके पिता ने सारे शहर में यह बात फैला दी कि तेरी माँ उस नाचनेवाली की बेटी थी और इसलिए नाचना गाना तेरी माँ का खानदानी पेशा था ।"

"हाँ, माँ···इस पुस्तक में भी लिखा हुआ है···और फिर पिताजी ने लाहौर छोड़ दिया । वहाँ रहना उनके लिए बहुत कठिन हो गया था । यहाँ दिल्ली आकर उन्होंने एक मकान खरीदा । माँ ने यह भी लिखा है कि इस मकान को खरीदने के लिए पिताजी को असल में उसी नर्तकी ने रुपये दिये थे···इकबाल नाम था उसका।···पर माँ, उस नर्तकी जैसे नेक बन्दे भी इस दुनिया में होते हैं ?" यह प्रश्न करके

अशू ने माँ के मुख की ओर देखा, और फिर आप ही कहने लगी : "माँ ने अपनी पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि दुनियाँ में भले लोग बहुत नहीं होते, पर जितने भी होते हैं, उन्हीं के नाते और लोगों को भी कभी बुरा न कहना। कोई भी जो तुम्हें अच्छा लगता है, उसकी खातिर उन सबको माफ़ कर देना जिन्होंने तुम्हारे साथ बुराई की है। आखिर उन 'बुरों' का दुनियाँ ने ही तुम्हारा एक 'अच्छा' तुम्हें दिया है…।" कहते-कहते अशू रुक गई।

कितना बड़ा दिल था माँ का…अशू की पलकें भीग गई…और उसे लगा कि उसके अन्तराल में उसके राग और वैराग के सातों स्वर अपने-अपने स्थान पर आ गये हों। माँ उसकी गुरु थी, माँ उसका ज्ञान थी। मन्त्रमुग्ध होकर अशू कमरे में लगे अपनी माँ के चित्र की ओर देखने लगी।

४

एमन कल्याण

राग के सातों सुरों में अशू की आत्मा लिपटी हुई थी। अलाप के गम्भीर विलम्बित स्वर तानपुरे के चारों तारों में घुले हुए थे। अशू अपलक दृष्टि से शून्य में देखती हुई गा रही थी; लगता था—उसकी सारी चेतनाएँ इस दृष्टि के अन्दर सिमट गई हों।

कमरे की खिड़की पश्चिम की ओर खुलती थी। इस पर सफेद रेशम का पर्दा पड़ा हुआ था। हवा के एक झोंके ने पर्दे को हिला दिया और सूरज की अन्तिम किरणें खिड़की में से होकर कमरे के फर्श पर आ पड़ीं। पर्दा फिर हिला और सूरज की किरणें उलटे पाँव लौट गईं।

अशू के विचार मानो बिखर गये हों, उसे पीछे की ओर से किसी के लम्बा साँस लेने की आवाज आई।

"राजन बाबू!" अशू ने जब मुड़कर देखा, दीवार के पास राजन बैठा हुआ था।

"क्षमा कीजिए, अशू जी…!"

"आप कब आए ?"

"थोड़ी ही देर हुई···।"

"आप···।"

"अशू जी !"

"आपने मुझे बुलाया क्यों नहीं ?"

"······"

"राजन बाबू ! आप क्या सोच रहे हैं ?"

"मैं सोच रहा हूँ···सोच रहा हूँ कि सूरज की अन्तिम किरणें अभी कमरे में आई थीं, और आकर चली गईं, मानो वे आपको आज का अन्तिम प्रणाम करने आई हों। उन्होंने आपको हिलाया नहीं, बुलाया नहीं। ऐसे ही शायद मुझे भी चले जाना चाहिए था···पर मैं जा नहीं सका।" राजन वैसे ही अपने दोनों घुटनों पर दाहिनी बाँह रखे दीवार के सहारे बैठा रहा।

"आप हर बात कविता में सोचते हैं।" अशू मुस्करा दी।

"नहीं, अशू जी, मुझ में वह मानवता नहीं जो अभी मैंने आप में देखी है। शायद यह कविता और संगीत का अन्तर है, या राजन और अशू जी का अन्तर है।" राजन मानो जबर्दस्ती मुस्करा दिया, और फिर कहने लगा, "मेरी कविता का जन्म भटकन में होता है, व्याकुलता में, निद्राहीन रातों में···पर··· पर आप अपने सुरों में लीन हो जाती हैं, सिर्फ सात सुरों में···न जाने हमारे देश में सात का अंक क्यों इतने महत्त्व का है···।"

अशू हँस दी।

"हाँ, अशू जी ! सात पुरियाँ बनाई हैं, सागर भी सात बनाए हैं, द्वीप भी सात, पर्वत भी सात, लोक भी सात, परलोक भी सात···हाँ, और याद आया, ऋषि भी सात, और रंग भी सात। ज्योतिषियों के कहने के अनुसार नाड़ी चक्र भी सात हैं। विज्ञान के कथन के अनुसार शरीर की मूल धातु भी सात हैं। और तो और हमारे पुराण अग्नि की सात ज्योति मानते हैं। योग और वेदान्त के शास्त्रों में मन की दशाएँ भी सात मानी हैं, और हमारे वेदों में माता भी सात प्रकार की कही हैं···।"

"माता सात प्रकार की कैसे, राजन बाबू ?"

"एक जन्म देने वाली माँ, एक माँ जो दूध पिलाती हैं, एक सौतेली माँ, एक बड़े भाई की पत्नी माँ, एक गुरु की पत्नी माँ, एक राजा की स्त्री माँ, और एक पति की माँ···।" राजन ने चाहा कि हँस सके पर वह हँस न सका, और ठहर कर बोला, "और राग के स्वर भी सात बना दिये, यह सप्तक···यह सप्तक जिसमें आप लीन हो जाती हैं; अशू जी, पर मुझे आपकी भाँति शान्ति प्राप्त नहीं है।"

"राजन बाबू !···" अशू हँस न सकी।

"आप क्या गा रही थीं ?"

"एमन कल्याण।"

"यह शाम का राग होगा ?"

"हाँ, शाम का।"

"आप वैसे ही गाती रहिये।"

"आपको अच्छा लगा ?"

"बहुत अच्छा, पर मुझे आपके इन सात स्वरों से ईर्ष्या हो गई है।"

"सात स्वर...।" अशू हँस पड़ी। "तब मै पाँच स्वरों वाला कोई राग गाऊँगी।"

"पाँच स्वरों के राग भी होते हैं?"

"हाँ, पर वह सम्पूर्ण ठाठ के राग नहीं कहलाते।"

"उन्हें क्या कहते है?"

"औडव।"

"और छः स्वरों के राग को?"

"षाडव।"

"और सात स्वरों के राग को?"

"सम्पूर्ण।"

"सम्पूर्ण...सम्पूर्ण तो शायद जीवन में कुछ नहीं होता। अपूर्णता ही जीवन की पूर्णता है...।"

"राजन बाबू!..."

"अपूर्ण ठाठ के राग मीठे तो होते होंगे?"

"बहुत मीठे।" अशू हँस दी।

"तब वही गाइये, अशू जी! मिठास का जीवन शायद लम्बा नहीं होता।"

"सम्पूर्ण ठाठ वाले भी उतने ही मीठे होते हैं।"

"तब फिर सम्पूर्ण ही गाइये, अशू जी! कम से कम यह शब्द 'सम्पूर्ण' तो है। कितना अच्छा शब्द है, पर शायद ठीक नहीं।"

"ठीक नहीं?"

"मुझे इसका अर्थ नहीं आता, अशू जी ! 'सम्पूर्ण'... 'सम्पूर्ण', इस शब्द का जैसे मेरे जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता। नहीं, नहीं...मैं तो यह कहूँगा, अशू जी, कि इस शब्द का हमारी धरती से कोई सम्बन्ध नहीं। इसीलिए मुझे इसका अर्थ नहीं आता, अशू जी ! (पर कभी-कभी अजीब-से शब्द भी कानों को अच्छे लगते हैं। और शायद वह चीज जो देखी न हो, जानी न हो, अच्छी लगती है। इसलिए तो लोगों को ईश्वर अच्छा लगता है) इसलिए तो तानसेन ने यह राग बनाया होगा,...यह एमन कल्याण...।"

"सम्पूर्ण जाति के तो अनेक राग होते हैं, राजन बाबू ! पर एमन कल्याण तानसेन ने नहीं बनाया था, अमीर खुसरो ने बनाया था।" अशू मुस्करा दी।

"चलो अमीर खुसरो ने ही सही, पर उसने सम्पूर्ण जाति का राग क्यों बनाया ?"

"उसे मालूम नहीं था कि आज कई सौ साल बाद आप इसके सम्बन्ध में यह प्रश्न करेंगे।" अशू फिर हँस पड़ी।

"अशू जी...!"

"..." अशू बोली नहीं।

"उसने यह राग कैसे बनाया था, अशू जी ?"

"कहते हैं फारसी के राग मोकम और हिन्दुस्तान के राग कल्याण को लेकर उसने यह राग एमन कल्याण बनाया था।"

"और उसने दो धरतियों को जोड़ दिया...।"

"राजन बाबू !"

"यह धरती की बात होते हुए भी धरती की बात नहीं है, अश्रू जी !"

"राजन बाबू !..."

"इस राग में उसने एक भी स्वर वर्जित नहीं किया ? सातों स्वर इस राग में लगा दिये ?"

"सातों स्वर तो कई रागों में लगते हैं, राजन बाबू !"

"पर उन्हें लगाना नहीं चाहिए...मैं बहुत भावुक हो गया हूँ, अश्रू जी !...मैं तो ऐसे ही बोलता रहूँगा। आप गाइये, अश्रू जी, फिर नहीं बोलूँगा।"

"कहिये, कौन-सा राग गाऊँ ?"

"बस, यह एमन कल्याण न गाइये, और जा जी चाहे गाइये।"

"और...।"

"वह राग जो सम्पूर्ण न हो।"

"पहाड़ी गाऊँ ?"

"कितने स्वरों का राग है ?"

"पाँच का।"

"फिर गाइये।"

"बिल्कुल भूपाली जैसा है। पर अब तो पहाड़ी भी सात स्वरों से गाते हैं। गवैयों ने अब इसे सम्पूर्ण जाति में शामिल कर लिया है। पर मैं पुरातन पहाड़ी गाऊँगी...पाँच स्वरों का राग...या फिर आप और कोई राग कहें...।"

अश्रू चुप हो गई।

"ये राग एक दूसरे से अलग होते हुए भी एक दूसरे से

मिलते हुए हैं, और···एक दूसरे के पास होते हुए भी एक दूसरे से दूर···।" राजन ने अपना माथा नीचा करके अपने दाहिने हाथ की हथेली पर रख लिया मानो अब वह अपनी भावुकता को कुछ बोलकर व्यक्त करना न चाहता हो और उसे अपने हाथ में थाम लेना चाहता हो।

"कई रागों में केवल एक स्वर का अन्तर होता है। भूपाली में अगर शुद्ध गा के स्थान पर कोमल गा लगा दिया जाय तो शिवरंजनी बन जाती है।" जरा ठहर कर अशू ने कहा।

"केवल एक स्वर···एक स्वर···केवल एक स्वर के अन्तर से दो आत्माएँ जीवन-भर बिछुड़ी रहती हैं। सदियाँ बीत गई हैं भूपाली शिवरंजनी नहीं बन सकी, सदियाँ हो गई हैं शिवरंजनी भूपाली नहीं बन सकी। दो आत्माएँ···।"

"राजन बाबू···!" अशू के ओंठ पीपल के पत्तों की भाँति काँप गये।

"केवल राग नहीं, अशू जी! मुझे कोई गीत सुनाइये।" राजन ने कहा।

"अच्छा···।" अशू के मुख से धीमे स्वर में निकला।

"जिसमें स्वर और शब्द का मेल होता है, अमीर खुसरो के एमन कल्याण की भाँति फारसी और हिन्दुस्तानी का मेल···जहाँ पूरब और पश्चिम आकर मिलते हैं···स्वर और शब्द···।"

राजन आगे भी कुछ कह रहा था, पर अशू ने सुना नहीं। उसने तानपुरे के तारों को छुआ जिनकी उभरती हुई

आवाज में राजन के शब्द मिट गये ।

अशू के गले से विहाग के स्वर निकले । कुछ मिनट··· कुछ और मिनट·· अशू ने अनुभव किया कि उसकी उँगलियों के पोटे तानपुरे के तारों से एक स्वर नहीं हुए हैं । उनके पोटों में एक प्रकार की विचलता थी और उसकी लय काँप रही थी ।

अशू ने अपनी सम्पूर्ण आत्मा से विहाग के भरवाँ स्वर लगाए, फिर भी उसे अनुभव हुआ कि उसके स्वर उसकी लय से अलग हो गये हैं । "स्वर लय से अलग हो जाएँ ?" अशू ने अपनी नाड़ियों में रोष के एक थपेड़े को अनुभव किया । यह तो ऐसा ही था जैसे कोई आत्मा अपने शरीर से अलग हो रही हो···नहीं, नहीं, वह इस तरह नहीं टूट सकती···स्वर उसका शरीर और लय उसकी आत्मा थी···वह स्वर से दूर नहीं जा सकती थी, वह लय से दूर नहीं जा सकती थी । अशू को प्रतीत हुआ मानो उसके अंग पीड़ा से ऐंठ रहे हों, मानो उसके प्राण और नेत्र पीड़ा से फट रहे हों, और शरीर की नाड़ियाँ बल खा रही हों । रोष का एक ज्वार उसकी नाड़ियों में भर आया ।

अशू के स्वर अपनी लय में लीन हो गये । विहाग के सातों स्वर उसके कंठ से भरपूर निकले, और इन सात स्वरों के सातों मन्त्रों ने उमकी आत्मा को कील दिया ।

अशू गाती रही, गाती रही, और फिर उसके गले की हरकत एक गीत गाने लगी :

मेरे हाथों पे मेंहदी लगी
लट उलझी सुलझा जा बालम···

गले में बड़ी ही कोमल हरकत आती गई। विहाग के अत्यन्त वैराग्यपूर्ण स्वर निकलते रहे और फिर अशू की आँखों में आप ही आप मद-सा छलक आया। अशू कभी तार सप्तक में गाती, कभी खरज के सुरों में। स्वर रेशम की पूनी की भाँति होते गये जिन पर अशू की आवाज और कोमल·· और भी कोमल होती गई। न जाने कितनी ही बार अशू के गले से निकला :

लट उलझी सुलझा जा बालम···

और फिर अशू ने गाया :

मोरे माथे की बिन्दिया बिखर गई है
अपने हाथ लगा जा बालम
लट उलझी सुलझा जा······

रेशम के इकहरे तार में जैसे कोई चुग-चुग कर मोती पिरोता हो, अशू का एक-एक स्वर उसकी लय में बँधता गया। माला के सुमेरु की भाँति सम आता और चला जाता। स्वरों की माला फिरती रही।

राजन का मन जो कि कुछ घड़ी पहले चंचल जल-धारा की भाँति लहरा रहा था अब कोहरे की भाँति जम गया। कमरे की अन्य जड़ वस्तुओं की भाँति राजन का चेतन मन भी जड़ हो गया था।

अशू की उँगलियाँ थम गईं। तानपुरे की अन्तिम झनकार हवा में लीन हो गई। अशू ने अपने नेत्र उठाकर राजन के मुख की ओर देखा। अशू की आत्मा, राजन की आत्मा राग के सातों स्वरों में कीली हुई थी।

जब बीन बजनी बन्द हो जाती है तब जिस तरह किसी

का होश फिर जाग उठता है, उसी प्रकार उठकर राजन ने कमरे की बत्ती जला दी ।

"आप मत उठिये, अशू जी !"

"मैं……।"

"बोलिये भी मत, अशू जी !"

"आप, अशू जी, सिर से पाँव तक सफेद कपड़े पहने हुए एक संगमरमर की मूर्ति-सी दीख पड़ती हैं…आप हिलिये डुलिये भी नहीं…आप बोलिये भी नहीं…।" राजन कह रहा था ।

"मैं तो सचमुच ही पत्थर का एक टुकड़ा हूँ, राजन बाबू !" अशू ने धीरे से कहा ।

"पर आपके ये स्वर क्या हैं ? ये सात स्वर, या तो सात दैत्य हैं, या फिर सात अप्सराएँ हैं…।"

"ये आत्मा को उठाकर कहीं ले जाते हैं, ये आत्मा को मोह लेते हैं । अशू जी…!"

"जी……!"

"मुझे इनके जादू से डर लगता है…।"

"उठिये, राजन बाबू, इन स्वरों के कमरे से बाहर चलें ।" अशू मुस्करा दी ।

"इनसे दूर…इनसे डर के, कहाँ कोई जा सकता है…।"

"चलिये, मैं आपके लिए कॉफी बनाती हूँ…।" अशू हँस दी ।

"ओह…रात होती जाती है…आप खाना खाइये, अशू जी !"

"मैंने आजकल रात का खाना छोड़ रखा है । बस दो टुकड़े डबल रोटी और एक प्याला कॉफी का पी लेती हूँ…

आइये मेरे साथ।" अशू उठकर खड़ी हो गई।

माँ ने आकर बताया कि वह नीता को सुला रही थी इसलिए पन्द्रह बीस मिनट बाद कॉफी बना देगी। अशू कमरे में नहीं बैठी, वह राजन को बाहर ग्राउण्ड में ले गई।

"यह मैंने गुलाब की क्यारी लगाई है।"

"असली गुलाब मालूम होता है, यहाँ तक महक आ रही है।" राजन ने क्यारी की ओर देखकर कहा।

"हाँ, असली। जरा छोटा होता है, पर बहुत खुशबूदार··· यह एक फूल खिलने वाला है, अभी आधा खिला है, फिर पन्द्रह दिन तक तो क्यारी भर जाएगी। विलायती गुलाब की भी मैंने सात कलमें मँगवाई हैं, कल आ जाएँगी।"

"फिर सात का जादू···यह देसी गुलाब और वह विलायती गुलाब···फिर अमीर खुसरो का एमन कल्याण···।"

अशू हँस दी, हँसती रही। "मुझे याद आया कल मुझे किसी ने एक उपहार भेजा है।" और अशू अपने कमरे की ओर दौड़ गई।

राजन गुलाब की उसी क्यारी के पास खड़ा रहा।

जैसे कभी-कभी निर्मल नील आकाश के मस्तक पर अचानक बादलों के कुछ टुकड़े घूमने लगते हैं, राजन को लगा··· "अशू···अशू···एक लट है, जीवन के चौड़े ललाट पर, लम्बे सुन्दर और रेशमी गुच्छे की भाँति, बल खाई हुई लट। न जाने लट उलझी हुई थी या नहीं, पर वह स्वयं उस लट में उलझ गया था। 'लट उलझी सुलझा जा···।' वह किससे कहे कि 'लट उलझी सुलझा जा।' नहीं, नहीं, वह तो सुलझना नहीं

चाहता था। वह तो लम्बे सुन्दर और रेशमी गुच्छे जैसा लट में उलझे रहना चाहता था।

छत को पार करके चढ़ते हुए चन्द्रमा की कुछ किरणें राजन के कन्धों पर पड़ने लगीं। राजन के शरीर में एक झुरझुरी-सी आई, मानो किसी ने उसके मन के विचारों को देख लिया हो।

अश्रू लौट आई। उसके हाथ में एक रेशमी रूमाल की छोटी-सी पोटली थी।

"यह कल की डाक से आई थी।"

"यह क्या?"

"इमली के पत्ते हैं?" राजन हैरान हो गया।

"राजेन्द्र ने ग्वालियर से भेजे हैं। आप तो जानते ही हैं, ग्वालियर में तानसेन की कब्र है और कब्र के पास ही इमली का एक पेड़ है। गवैये बड़ी दूर-दूर से उस कब्र पर जाते हैं, जैसे कोई तीर्थ-यात्रा करने जाता हो, और इमली के पत्ते जरूर चबाते हैं। मैंने आपको बताया था कि यह बहुत प्राचीन कहावत है कि इन पत्तों को खाने से कण्ठ सुरीला हो जाता है।" अश्रू मुस्करा दी और एक पत्ता उठाकर अपने मुँह में डाल लिया। "इससे बढ़िया उपहार मुझे कोई नहीं भेज सकता। आपको याद होगा; आप एक बार ग्वालियर जाने वाले थे लेकिन फिर गये नहीं, मैंने आपसे कहा था कि आप अगर ग्वालियर जाएँ तो मेरे लिए तानसेन की कब्र के पास उगी हुई इमली के पत्ते ले आएँ। यह लीजिए, राजन बाबू, आप भी एक पत्ता लीजिए।" अश्रू हँसने लगी, पर जब उसने राजन

के मुख की ओर देखा, वह फिर हँस न सकी।

"मैं कण्ठ सुरीला करके क्या करूँगा, अशू जी, आप खाइये।" राजन के मुँह से निकला और उसने हाथ से अशू का हाथ पीछे हटा दिया।

"शायद कविता और सुरीली हो जाए।" अशू ने हँसने की कोशिश की।

"कविता तानसेन की कब्र के पास उगे हुए इमली के पत्ते से नहीं···अशू जी !"

"तानसेन की कब्र के पास नहीं तो किसी कालिदास की समाधि के पास उगे हुए···।"

"कालिदास की समाधि के पास उगे हुए किसी भी फूल पत्ते से नहीं, अशू जी, आपकी क्यारी की एक पत्ती से···।" और राजन ने क्यारी के अधखिले गुलाब की पंखड़ी तोड़कर अपने मुँह में डाल ली।

चन्द्रमा की कुछ तिरछी किरणें अब प्रकाश की एक गहरी लकीर बन गई थीं। चन्द्रमा का बाकी भाग अभी छत की ओट में था। चाँदनी की वह गहरी रेखा अशू के मुख पर पड़ रही थी। एक शीतल-सी सिहरन अशू के शरीर में आई और उसे लगा जैसे किसी पहाड़ी झरने के शीतल जल की बौछार उसके मुँह पर आ पड़ी हो।

"अशू बीबी !" माँ की आवाज आई। अशू और राजन के पैर चुपचाप आवाज के पीछे-पीछे कमरे में चले गये।

मेज पर सिकी हुई डबल रोटी, मक्खन, क्रीम और कॉफी रखी हुई थी। अशू के हाथ से कॉफी का प्याला लेते हुए

राजन ने कहा :

"राजेन्द्र कब से ग्वालियर गया हुआ है ?"

"पिछले हफ़्ते से।"

"अब तो आने वाला होगा ?"

"खयाल तो है।"

"उसने अपना उपहार डाक से क्यों भेजा है। आते हुए अपने साथ ला सकता था।"

"हाँ, ला तो सकते थे।"

"राजेन्द्र का आपसे कब से परिचय है ?"

"कोई डेढ़-एक साल से।"

"......"

"राजन बाबू ! आपकी तबियत शायद ठीक नहीं है।"

"परिचय कैसे हुआ था ?" राजन अपने ही विचारों में लीन था, शायद उसने अश्रू की बात नहीं सुनी।

"मैं एक संगीत-सभा में गाने के लिए गई थी। वहाँ राजेन्द्र बाबू ने अपने पत्र के लिए कई तस्वीरें ली थीं, एक तस्वीर मेरी भी थी, फिर तस्वीर के साथ उन्होंने जो कुछ लिखा था वह पूछने के लिए वह मेरे घर आए थे।" अश्रू ने सहज भाव से कहा और टोस्टों पर मक्खन लगाने लगी।

"...और फिर वह बराबर आता रहा।"

"हाँ...।" अश्रू आगे भी कहना चाहती थी कि फिर राजेन्द्र ने उसके वास्ते कई सभाओं की व्यवस्था की, कई समारोहों में बड़े उत्साह के साथ उसका गाना करवाया, वह...वह..., पर अश्रू ने कुछ कहा नहीं।

"राजेन्द्र आप को अच्छा लगता है ?" राजन के मुँह से निकल गया, पर उसके मुख का रंग उड़ गया मानो उसके प्रश्न ने उसे लज्जित कर दिया हो।

अशू बोली नहीं।

"मुझे क्षमा कीजियेगा, अशू जी !" राजन ने कहा और हाथ का खाली प्याला मेज पर रखकर उठ खड़ा हुआ।

"ओह...!" राजन के मुख से निकला। उसने मेज की ओर देखा तो अभी अशू कॉफी पी रही थी, अभी उसकी प्लेट में टोस्ट भी उसी तरह रखा हुआ था। वह फिर कुर्सी पर बैठ गया।

"और कॉफी बनाऊँ ?" अशू ने कहा।

"नहीं...अच्छा, बना दीजिये।" और राजन ने अपना प्याला अशू के आगे कर दिया।

अशू ने माँ से कहकर गरम कॉफी मंगवाई, क्रीम भी और मंगवाई, और राजन के प्याले को गरम पानी से धोकर वह कॉफी बनाने लगी।

"आज एमन कल्याण ने न जाने मुझे क्या कर दिया है। आप नाराज तो न होंगी, अशू जी ! शायद आज मैं एक कविता लिखूंगा। मैं तो बहुत भावुक हूँ। जब भी कुछ लिखना होता है मुझे ऐसे ही हो जाता है, मैं मानो खो जाता हूँ... मैं..." फिर राजन चुप हो गया।

अशू ने राजन की ओर एक बार देखा, और फिर एक हल्की-सी मुस्कान उसके ओठों पर आ गई। राजन समझ नहीं सका कि अशू के मन में क्या है।

"आप हँस रही हैं, अशू जी ! शायद आपको मुझ पर तरस आ रहा है पर···पर तरस अच्छा नहीं होता।"

"राजन बाबू !···"

"आपने कहा था कि आप पत्थर का एक टुकड़ा हैं, आप पत्थर ही रहें, अशू जी···आप···।" राजन इतना भावुक हो गया कि उसे बोलना भी कठिन हो गया।

कितने ही मिनट बीत गये। न राजन बोल सका, न अशू ने ही कुछ कहा। माँ कमरे में आई।

"बीबी, तुमने शाम की डाक नहीं देखी, मेज पर पड़ी हुई है।"

"कहाँ···?" अशू को लगा जैसे इस चुप को तोड़ने के लिए यह डाक कहीं से आ गई थी। माँ ने दो अखबार और एक लिफाफा लाकर अशू के सामने रख दिया।

अशू ने लिफाफा खोला और अन्तिम पन्ने पर लिखनेवाले का नाम पढ़कर बोली, "राजेन्द्र की चिट्ठी है···।"

"बड़ी लम्बी है।" अशू ने फिर कहा।

राजन ने जवाब नहीं दिया। अशू चिट्ठी पढ़ने लगी।

"अशू जी !

"मैं चाहता था आपके नाम के साथ कोई शब्द जोड़ कर लिख सकता, पर मैं कोई उचित शब्द नहीं सोच सका। सब शब्द बड़े साधारण थे ···

"कल मैंने आपको इमली के कुछ पत्ते भेजे हैं। असल में कितने ही दिनों से कुछ भेजने के लिए मैंने सारा शहर छान मारा। कोई चीज जंचती ही नहीं थी। सारी चीजें, महंगी या सस्ती, न जाने आपको

कैसी लगतीं। पर कल मैं यहाँ आया और मैंने गवैयों को तानसेन की कब्र पर सिर झुकाते देखा तो मुझे याद आया कि आपने मुझे तानसेन की इस कब्र के पास उगे हुए इमली के पेड़ के बारे में बताया था। उस दिन आप राजन से कह रही थीं कि वह अगर ग्वालियर जाए तो यह पत्ते जरूर ले आए। पर तब से ग्वालियर आना नहीं हुआ। मैं आज काम से यहाँ आया था। वृक्ष बड़ा सुन्दर है, बड़ा घना। मेरे मन में आया, काश ! आप उस समय उस वृक्ष की छाया में बैठी होतीं···

"पर अच्छा हुआ, आप नहीं थीं। आप होतीं तो शायद मैं आपको कुछ भी न बता सकता। इमली के पत्ते बड़ी साधारण-सी चीज हैं, पर तानसेन की कब्र के पास उगे हुए पत्ते साधारण नहीं। 'प्यार' भी तो बड़ा साधारण-सा शब्द है, पर जब कोई इसका अर्थ अपने रोम-रोम में जान लेता है तब यह साधारण नहीं रहता।···

"इमली के ये पत्ते आप जरूर खाइयेगा। आपके जादू-भरे कण्ठ में, मैं सोचता हूँ, इससे अधिक जादू क्या आएगा, फिर भी···सोलहवी···शती में हिन्दुस्तान ने तानसेन को जन्म दिया था, अब चार शती बाद आपको······

"एक बार की बात है, राजन बैठा हुआ था, आप बैठी हुई थीं, मैं बैठा हुआ था, और मैंने यह दावा किया था कि हम अखबार वाले, प्रेस वाले, कलाकार नहीं होते पर कलाकारों को जन्म देते हैं। आज मेरे जी में एक लालसा है कि मैं भी कलाकार होता, मैं वह सब बोल सकता जो मैं बोलना चाहता हूँ। मैं आपको एक बार बोल कर बताता, अशू जी······

"पर मैं कलाकार नहीं हूँ, और न सम्राट् अकबर, जिसने

तानसेन को अपने दरबार की दीवारों में लपेट लिया था। मैं···मैं तो केवल राजेन्द्र हूँ···मैं तो केवल यह पत्ते आपको भेज सकता हूँ। केवल पत्ते और केवल आपके लिए···

"कल यहाँ बैठकर मैं इमली के पत्ते चुन रहा था और आज मैं आपको एक पत्र लिख रहा हूँ। यह पत्ते मैं अपने साथ भी ला सकता था, पर फिर मैं वह पत्र नहीं लिख सकता। कल भी सोचा था, लिखूँ पर लिख न सका, और अब यहाँ से मेरे चलने में केवल एक दिन बाकी है! आज फिर मैं इमली के इस पेड़ के नीचे बैठा हुआ हूँ।

"इन दिनों में शायद राजन आपसे मिला होगा। उसके बारे में भी मैं आपसे कुछ कहना चाहता था, पर कभी कह नहीं सका। आप कलाकार हैं, वह कलाकार है, आप उसकी कदर करती हैं। जहाँ तक कला का प्रश्न है, मैं भो उसकी कदर करता हूँ। पर आज मैं यह भी कहना चाहूँगा, अशू जी, कि वह आपका मित्र होने के योग्य नहीं है। मैं ही उसे आपके पास लेकर आया था और आज मैं ही यह कह रहा हूँ। यह नहीं कि तब मुझे पता नहीं था, केवल इसलिए कि आपकी इच्छा थी। अशू जी, आप साधारण व्यक्ति नहीं हैं। लेकिन कोई भी साधारण पर सुन्दर लड़की राजन की मित्र हो सकती है। उसके लिए लड़की एक वस्तु है, वस्तु भी स्थायी वस्तु नहीं। और मैं यह भी जानता हूँ कि उसके अब के गीतों में आपका वर्णन है, बिलकुल उसी तरह जैसे आपसे मिलने से पहले उसके गीतों में किसी और लड़की का वर्णन था। शायद मुझे इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहिए। उसके लिए आप

सुन्दर हैं, शायद उसकी साधना भी, पर उतने ही समय के लिए, जब तक आपको प्राप्त करना उसके लिय आसान नहीं।

"अच्छा, अशू जी, आप अगर इमली के वह पत्ते खा लेंगी तो मैं अपना सब कुछ सुकारथ समझूँगा। आपके कण्ठ में सुर है, राग है, जादू है। और मैं सोचता हूँ कि किसी के गले में इससे अधिक जादू कैसे आ सकता है...।

आपका

राजेन्द्र"

मेज पर झुके हुए अशू ने पूरा पत्र पढ़ डाला। जब वह सीधी होने लगी तो उसने अनुभव किया जैसे उसकी रीढ़ की हड्डी पर कहीं चोट लग गई हो। पीड़ा की एक रेखा उसके मुख पर दौड़ गई। राजन अखबार पढ़ रहा था।

"अच्छा, मैं चलता हूँ, अशू जी !" राजन कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। अशू न कुछ कह ही सकी, न उठ सकी।

"आपका जी ठीक नहीं है। चलिए मैं आपको आपके सोने के कमरे तक छोड़ आता हूँ।" राजन ने ही कहा और अशू को अपने हाथ से सहारा दिया। अशू उठकर खड़ी हो गई।

सोने वाले कमरे में एक पलंग पर नीता सोई हुई थी। दूसरे पलंग के पास पहुँच कर राजन ने अशू की ठंडी उँगलियाँ अपनी हथेलियों से छुईं।

"अब मैं जाता हूँ, अशू जी, आप सो जाइयेगा।" राजन ने धीरे से कहा और कमरे से लौटने लगा।

"राजन !" अशू के कण्ठ से उसकी आवाज इस तरह निकली जैसे उसके गले ने उसकी आवाज दोनों हाथों से दबा-

कर पकड़ी हुई हो ।

"आप सो जाइये, अशू जी !" राजन के पाँव रुक गए पर उसने मुड़कर अशू की ओर देखा नहीं ।

अशू प्रतिमा बनी पलंग के पास खड़ी थी । उसके कण्ठ से कोई आवाज नहीं निकली ।

राजन मुड़ा और उसने अशू का एक हाथ पकड़कर उसको पलंग की पट्टी पर बिठा दिया । "लेट जाइये ।" राजन ने कहा ।

अशू चुपचाप पलंग पर लेट गई । राजन ने पैताने का कंबल उठाकर अशू के ऊपर डाल दिया और जब वह पैर की ओर कंबल को दुहरा कर के अन्दर की ओर मोड़ने लगा तो उसके हाथ अशू के पैरों से छू गये--पैर जैसे बरफ के टुकड़े हों ।

राजन पलंग पर बैठा नहीं, पर उसने झुककर अशू के दोनों पैरों को अपने हाथों से मला और अपनी हथेलियों से सहलाया ।

"राजन !" बहुत देर के बाद धीरे से अशू की आवाज सुनाई दी ।

"मैं जाऊँ, अशू जी !" राजन ने कहा पर अशू के मुख की ओर नहीं देखा ।

"राजेन्द्र की चिट्ठी···।" अशू की धीमी-सी आवाज इतना ही कहकर रुक गई ।

"होगी कोई एमन कल्याण की बात···कोई नया राग···।" राजन हँसने लगा ।

"एमन कल्याण बनाने वाला तो कलाकार था···।" अशू

में मानो जान लौट आई हो और उसकी आवाज में भी कुछ शक्ति आ गई हो। उसने राजन के हाथों में से अपने पैरों को पीछे खींच लिया और बोली—"कलाकार कभी सुर से दूर नहीं जाते।"

राजन चुप रहा। फिर मानो उसकी आकृति में एक प्रकार की गति आ गई, उसके होठों से निकला—"वास्तविक अर्थ में किसी एमन कल्याण को जन्म दे सकना बड़ा कठिन है, अशू जी, बड़ा ही कठिन......।" और राजन चला गया।

५

सरगम

चार पहर लम्बी रात का अन्तिम पहर समाप्त भी न हो पाता था कि जब अशू की आँख, एक नियम में बँधी हुई सी, खुल जाती थी। उस समय अशू माँ को नहीं जगाती थी। बिजली के चूल्हे पर एक प्याला चाय वह स्वयं बनाती थी और चाय की आखिरी घूंट पीते-पीते वह तानपुरे के पहले तार को छेड़ लेती थी।

आज भी अशू की आँख, नियम से बँधी हुई सी, उसी प्रकार खुल गई। आज भी चाय का प्याला उसने स्वयं बनाया और उसकी आखिरी घूंट पीते-पीते तानपुरे के पहले तार को छेड़ा। अशू के गले में भैरव के स्वर जाग उठे। आरोही अवरोही के स्वरों पर फिरने के बाद भैरव के बोल इन शब्दों में प्रस्फुटित हुए :

जागिये गोपाल लाल भोर भई अंगना

और अशू का गला भैरव के बोलों के साथ क्रीड़ा करता रहा। जब अस्थाई के बोल न होते तब भैरव के स्वरों की

तानों का प्रवाह पहाड़ी सरिता की भाँति संगीतमय हो उठता और फिर अस्थाई एक लहर की भाँति आती और स्वरों के जल में जल बनकर समा जाती। गले की हरकत और कोमल···और भी कोमल हो गई, और फिर अशू ने अन्तरा उठाया :

बाट को बटोही चलत पंछी चुगत चुगना
दीपक को ज्योति घटी अंखियन को अंजना
जागिये गोपाल लाल भोर भई अंगना
जा···

और 'जा' के साथ सम पर आकर इस बार अशू का ध्यान बँट गया। खिड़की के पर्दे में से छनकर प्रभात की प्रथम किरणें कमरे में लाल कालीन पर पड़ रही थीं।

फिर वह किरणें और आगे बढ़ीं जैसे बाँह लम्बी करके वह किसी चीज को छूना चाहती हों।

जैसे कोई दोनों हाथों में पकड़कर धागे में बंटे हुए तार को तोड़ता है, अशू ने किरणों की ओर से ध्यान तोड़कर राग में लीन हो जाना चाहा।

राग के स्वरों में अशू का मन लग नहीं रहा था, मानो धागे का बटा हुआ तार टूट न रहा हो और पोटों पर धागे के खिचने से एक लकीर बनती जा रही हो। अशू फिर किरणों के जाल में फँस गई। किरणों ने अपनी बाँह और लम्बी कर ली और अब वे जैसे बिलकुल अशू के पैर छू लेना चाहती थीं। अशू ने जल्दी से अपने पैर पीछे कर लिये।

"एक दिन···एक दिन···।" अशू के मन में कुछ होने लगा।

"एक दिन इसी तरह सूरज की किरणें कमरे में आई थीं, पर वह डूबते सूरज की अन्तिम किरणें थीं और राजन ने कहा था, "मानो वह दिन का अन्तिम प्रणाम करने आई हों।"...और फिर...फिर राजन ने कहा था, "जैसे यह किरणें आईं और आकर चली गईं, उन्होंने आपको हिलाया नहीं, बुलाया नहीं, वैसे ही शायद मुझे भी चले जाना चाहिए था...पर मैं जा नहीं सका...।" मन की सारी लहरें मानो अश्रू के ऊपर उछल आई हों, अश्रू की आत्मा डूब-सी गई।

फिर वह सोचने लगी, "आज यह चढ़ते सूरज की किरणें हैं...पीछे नहीं मुड़तीं...आज यह मुझे हिला रही हैं, बुला रही हैं, पीछे नहीं मुड़तीं...इन्हें चले जाना चाहिए, पर ये जातीं नहीं... राजन...।"

मन की इन लहरों में से निकलने के लिए अश्रू ने किनारे की ओर मुख किया। उसका किनारा एक ही था, उसका राग, उसकी सरगम। तानपुरे के सोये हुए तारों को उसने मानो झंझोड़ कर जगाया। भैरव अलापते हुए और 'जागिये गोपाल लाल' गाते हुए तानपुरे के तार जैसे सो गए थे। उसने फिर जगाना आरम्भ किया :

जागिये गोपाल लाल भोर भई अंगना
जागिये...

और लहरें फिर उसके मन में उछलने लगीं। मन्द बयार उसे भली जान पड़ी और सवेरे का प्रकाश फैलने के साथ उसे लगा उसके आँगन में कोई भोर उतर रही है, जीवन के पथ उसके सामने बिछे हुए हैं और उसके पैर, मानो बेबस हों, उन्हीं

राहों पर पड़ रहे हैं···राह···पंछी···भोर···फ़ूल के प्रस्फुटन की भाँति उसका राग उसके भीतर कुछ जगा रहा था।

"आज का सूरज कैसा था? आज की किरणें कैसी थीं? आज की भोर···।" सोचते हुए अशू ने फिर भैरव के बोल गाए :

बाट को बटोही चलत पंछी चुगत चुगना
दीपक को ज्योति घटी अंखियन को अंजना
जागिये···

उसका गायन थम गया। अपनी पीठ की ओर से उसे किसी के पैरों की आहट हुई। उसके मन में ये शब्द घूम गए :

"वैसे ही शायद मुझे भी चला जाना चाहिए था···पर मैं जा नहीं सका···।"

और अशू की आँखों के आगे राजन का मुख घूम गया। उसी मुखड़े को देखने के लिए जब उसने मुँह फेरा तब, तारा उसके पीछे खड़ी हुई थी।

"मैं गहरी नींद में सोई हुई थी, अशू जी, पर आपका भैरव मुझे जगाकर ले आया है।" तारा मुस्करा दी।

"आज तो मेरा भैरव बहुत मील चलकर गया···।" अशू हँसने लगी और उसकी हँसी ने उसके मन में उठ रहे एक विचार को छिपा लिया। फिर भी उस छुपे हुए विचार ने उसके भीतर एक अंगड़ाई ली—"मेरे भैरव ने उसे क्यों नहीं जगाया?···"

"आपके क्या कहने हैं, अशू जी!" तारा हँसने लगी।

"क्यों?"

"आप भाग्यवान हैं, अशू जी ! आपके पास इतने राग हैं।"

"तुम भी तो मेरे जैसा ही गाती हो, तारा !"

"पर राग नहीं, सिर्फ गीत, सिर्फ गजल···।"

"गीत ही सही, गजलें ही सही···।"

"पर राग कभी पुराने नहीं होते, अशू जी ! आज से एक सदी पहले भी गानेवाले भैरव में यही बोल गाते थे, "जागिये गोपाल लाल···।"

"यह तो केवल स्वर साधना के लिए है।"

"पर गीत तो एक बार के बाद पुराना हो जाता है, और उससे अगली बार और पुराना···पर मुझे इसकी कोई शिकायत नहीं, अशू जी, मैं तो फिर भी गीत ही गाना चाहूँगी, चाहे गीत को एक दिन गाकर अगले दिन न गा सकूँ··।" तारा खिल-खिला कर हंस पड़ी।

"अच्छा, गीत ही सही। मैं तानपुरा छेड़ती हूँ, तुम कोई गीत सुनाओ।"

"मेरे गीतों में कोई राग शुद्ध नहीं लगता।" तारा फिर हँस पड़ी।

"स्वर तो शुद्ध लगते हैं···।" अशू मुस्करा दी।

"मेरे गीतों का न कोई वर्ण है, न जाति है, न नाम और न ही मेरे गीतों की कोई इस तरह की वेशभूषा है जिस तरह की कि आपके भैरव की है, आपके भैरव ने गंगा जी को अपने सिर पर धारण किया हुआ है, और अपने मस्तक पर चन्द्रमा की कला का तिलक लगाया हुआ है, सांपों के गहने पहने हाथी की खाल के वस्त्र पहने, हाथ में त्रिशूल लिये, सफेद रंग

वाला भैरव…।" तारा फिर खिलखिला कर हँसने लगी ।

"न सही भैरव, कोई गीत ही सही जिसके वस्त्र रंगीन होते हैं…।"

"जिसके वस्त्र नित्य ही समय के दर्जी नए से नए बना देते हैं…।" तारा ने अशू की आँखों में आखें डालकर देखा और फिर कहा, "जिन गीतों का लिखने वाला एक राजन नहीं सैंकड़ों राजन हैं ।"

"क्या मतलब ?" अशू ने आश्चर्य से तारा के मुख की ओर देखा ।

"ये कवि जिनसे हर सुन्दर लड़की गीत लिखवा सकता है…।" तारा कहते-कहते रुक गई और फिर बोली, "मैं गीत लिखती नहीं, पर गाती हूँ । मैं एक गीत को सिर्फ एक बार गाती हूँ और फिर पहने हुए कपड़ों की तरह उतार कर रख देती हूँ…।"

"तारा…!"

"मैं किसी भी राग के साथ बँध नहीं सकती, अशू जी ! गीतों में भी राग बोलते हैं पर कई राग ।"

"मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है, तारा !"

"समझने की कोई जरूरत भी नहीं अशू दीदी…इन बातों को जाने दीजिये…मैं आपके लिये एक चीज लायी हूँ ।" तारा ने अपने हाथ में पकड़ी हुई रूमाल की पोटली में से कुछ पत्ते निकाल कर अशू की हथेली पर रख दिये ।

"यह क्या ?…" अशू ने देखा इमली के पत्ते उसकी हथेली पर पड़े हुए हैं । वह चकित होकर तारा की ओर देखने लगी ।

"इनसे कण्ठ सुरीला हो जाता है, दीदी ! बड़ी दूर से आए हैं, मुझे किसी ने भेजे हैं।" तारा ने मुस्कराते हुए अशू की ओर देखा।

अशू के मुख पर हल्का पीलापन आ गया और वह मुस्कराना चाहते हुई भी मुस्करा न सकी।

"एक पत्ता तो खा लीजिए, दीदी ! ये पत्ते ग्वालियर से चलकर आये हैं आपके पास।" और तारा ने गौर से अशू के मुख की ओर देखा। अशू की पलकें झुकी नहीं लेकिन उसके माथे पर तनाव-सा आ गया और वह तारा के मुख की ओर देखती रही।

"तानसेन की कब्र के पास उगे हुए इमली के पेड़ से··· आप यह पत्ता खा लेंगी तो मैं अपना सब कुछ सुकारथ समझूँगी।"

अशू अवाक रह गई। तारा खिलखिला के हँस दी। "नहीं खायेंगी, दीदी ? अच्छा, फिर मझे लौटा दीजिये। और फिर यह पत्ते आपके पास भी तो हैं ही।"

"तारा···!"

"मैंने ठीक कहा है न, दीदी ! आपके पास तो पहले से ही यह पड़े हुए हैं, फिर और की आपको क्या जरूरत है···पर हमें कम से कम एक पत्ता तो खा ही लेना चाहिये, दीदी, क्योंकि उससे भेजनेवाले का सब कुछ सुकारथ हो जायगा···।" तारा फिर हँस पड़ी और उसने एक पत्ता अपने मुँह में डाल लिया और एक पत्ता अशू के मुँह की ओर बढ़ा दिया।

"तुम्हें कैसे पता है, तारा ?" अशू ने मुँह फेर लिया।

"क्योंकि भेजनेवाले ने लिखा था कि मैं तो आपके लिए केवल यह पत्ते भेज सकता हूँ, केवल पत्ते और केवल आपके लिए...और उसकी इस लफ्फाजी से मैं उसी समय जान गई थी कि उसने यह पत्ते जरूर आपको भी भेजे होंगे और आपको भी यही लिखा होगा। कहिये, उसने लिखा या नहीं ?"

"हाँ...।"

"इसीलिए तो मैं कहती हूँ, दीदी, कि मैं किसी राग के साथ नहीं बँध सकती, मैं एक गीत को सिर्फ एक बार गाती हूँ और फिर पहने हुए कपड़ों की तरह उतार कर रख देती हूँ...।"

अशू बोली नहीं। तारा ने ही फिर कहा, "अब समझ में आया, दीदी ? आप कह रही थीं मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा...मैं कहती हूँ समझने की कोई जरूरत भी नहीं दीदी !... आजकल सच्चे रागों का जमाना नहीं, सिर्फ एक तर्ज, चलती हुई, और फिर यह तर्ज...।"

"तारा...!" अशू की नाड़ियाँ जैसे पीड़ा से टूट गयी हों।

"यह सच बात है, दीदी !"

"यह सब सुनना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

"पर सुनना तो पड़ेगा ही...।"

"नहीं तारा ! यह सब भयानक है, बहुत भयानक...!"

"फिर आप ही उसकी बात कीजिये जो भयानक नहीं होता...।"

"इस भटकने से कुछ हासिल नहीं होता, तारा !"

"तब पत्थर हो जाना पड़ेगा, दीदी ! जीवन तो भटकने

का ही दूसरा नाम है ।"

हाँ, जब तक किसी राज मार्ग पर पैर न पड़ जायें...।" अशू ने तानपुरे को अपनी बाँह में लपेट लिया और सिर्फ तानपुरे से अपना माथा छुआकर मानो उसका सहारा लिया। सभी पगडण्डियाँ राही के पैरों को भटकाती हैं।" अशू कह रही थी।

"पर इन पर चलना तो पड़ेगा ही।"

"नहीं, तारा!"

"जीवन की कोई भी राह मंजिल को नहीं ले जाती, दीदी!"

"यह न कहो, तारा! जब मंजिल का खयाल भी बाकी नहीं रहेगा, तब...?"

"तब क्या होगा, दीदी?"

"तब फिर यह पैर ही अकारथ हो जायेंगे, तारा!" अशू का गला भर आया।

"बहुत अच्छा खयाल है, दीदी, पर यह एक खयाल ही है...।" तारा हँस दी।

"तारा, एक बात पूछूँ?"

"हाँ।"

"कभी तुम्हें यह खयाल एक सचाई मालूम होता होगा?"

"हाँ, दीदी, जब मैं आप जैसी बच्चा थी!" तारा हँसने लगी।

"हँसी न करो, तारा, तुम तो मुझसे दो बरस छोटी हो।"

"आयु केवल बरसों से ही नहीं बढ़ती, दीदी!" तारा फिर

हँस दी।

"नहीं, तारा, हँसो मत...।"

"बहुत रो चुकी हूँ, दीदी! अब नहीं रो सकती, और रोना किसके लिये! इन आँसुओं के योग्य कोई नहीं होता।"

"तारा...!" कहते-कहते अशू के ओंठ काँप उठे।

"आँसुओं का मूल्य कोई नहीं जानता, दीदी, लोग सिर्फ हँसियों के मूल्य चुकाते हैं। ऐसे ही सही, अब तो मैं सिर्फ हँसती हूँ, और गाती हूँ।" तारा हँसने लगी।

"यह हँसी...।"

"भयानक नहीं, दीदी, क्योंकि मैं इन सब पर हँसती हूँ, अपने-आप पर हँसती हूँ, और...।"

"तभी तो यह भयानक है, तारा, किसी दूसरे पर हँसने के बाद फिर अपने ऊपर भी हँसना पड़ता है।"

"पर रोना बहुत कठिन होता है, दीदी!"

"रो सकना बहुत कठिन होता है पर भयानक नहीं, और हँसना शायद बहुत आसान होता है, पर बहुत भयानक...!"

"मैं रोना नहीं चाहती, दीदी!" तारा ने मानो ऊब कर कहा, "मैं हँसना चाहती हूँ, मुझे इसका भयावनापन अच्छा लगता है।"

"यह हँसना किसी रोने का विकृत रूप है, तारा!"

"शायद...पर मुझे रुलानेवाले ने यह नहीं सोचा था कि किसी दिन उसी की जाति वाले को मेरे रोने का बदला चुकाना पड़ेगा।" तारा के माथे पर एक सिकुड़न-सी आ गई और उसने हाथ में लिये हुए रूमाल में पड़े इमली के पत्तों को

दोनों हाथों में दबा कर मरोड़ा ।

"ये उपहार भेजनेवाले और पत्र लिखनेवाले, ये कला के पारखी और ये कलाकार...।" तारा ने एक बार अपने दाँतों को भींच लिया, फिर बोली, "कितने आराम से लिखते हैं कि मैं आपको यह उपहार भेज रहा हूँ, केवल आपको...मानो सृष्टि के आरम्भ से ही इनका हर लड़की के साथ सम्बन्ध जुड़ गया हो...दुनिया का कौन-सा ऐसा झूठ है जो इनकी कला ने नहीं बोला...कोई रोए और इनके लिए रोए ?" तारा ने फिर एक बार दाँतों को पीसा और कहने लगी, "ये हमारे दिलों से खेलना चाहते हैं । जीवन को एक खेल समझ कर ही खेलना है तो मैं इनकी कला के साथ जी भर कर खेलूँगी...।"

"इस खेल के खेलने में तो तबाह हो जाना पड़ेगा, तारा !" अशू ने रोष भरे स्वर में कहा ।

"तबाही कोई इतना भयानक शब्द नहीं, दीदी, और अगर है भी तो अब इतना नहीं लगता । आखिर जीवन एक आदत ही तो है ।" तारा मुस्करा दी ।

"सपेरों को साँपों से खेलने की आदत होती है, पर निरी पूरी आदत ही नहीं, उनके पास जहर का मन्त्र भी होता है उस मन्त्र को सिद्ध करना ही तो कठिन होता है, तारा !"

"अगर कोई, अपनी हड्डियों में इतना जहर रचा ले कि फिर उसके शरीर पर और किसी जहर का असर ही न हो ।" तारा हँस दी और हँसते-हँसते बोली, "मुझे एक विष-कन्या होना चाहिए था, दीदी, एक विष-कन्या, जिसके सुन्दर और संगमरमर जैसे अंगों में जहर भरा होता है । बदला लेने का

कितना खूबसूरत ढंग है, दीदी···!"

"विष-कन्या नहीं, तारा, विषलयकरणी।" अशू मुस्करा दी।

"विपलयकरणी।"

"दोनों नामों में कितना कम अन्तर है तारा, कितना कम। पर एक घाव करती है, दूसरी घाव को भरती है।"

"पर मैं तो किसी भी घाव को भरना नहीं चाहती, दीदी!"

"यह जीवन को बहुत बड़ी हार है, तारा!"

"मृत्यु भी तो जीवन की हार है।" तारा हँस दी।

"कौन जानता है कि मृत्यु की संध्या में से ही जीवन का प्रभात जागता हो। समय के इस चक्र को रात्रि के अँधकार में नहीं बाँधा जा सकता, तारा! जीवन और मृत्यु जिन्दगी के दो नियम हैं जिनमें बंधी हुई यह धरती भी एक चक्कर में पड़ी रहती है···।"

"तब फिर इस तरह ही, दीदी, कि मैं विष-कन्या बनूं, आप बनें विषलयकरणी।" तारा हँसने लगी, "आपके आंसू और मेरी हँसी खेलते रहेंगे।···जीवन के दो छोर।" तारा हँसती रही।

"शायद इन्हें तोड़कर दो अलग छोर नहीं किया जा सकता, तारा, राग चाहे कुछ भी हो पर सुर में हो। सप्तक ही किसी राग के जीवन की सचाई है। बस वह राग अपने सप्तक से अलग होकर न चले···।" अशू के मुख पर विश्वास-जन्य स्थिरता आ गई और फिर वह उसी स्थैर्य से बोली, "कोई भी भावना जो वश के बाहर हो जाती है अपने सुर से हट

जाती है, चाहे वह प्रेम की भावना हो, चाहे घृणा की।"

"अच्छा दीदी, आप स्वरों की साधना कीजिए और मैं जरा···।" तारा कहते-कहते रुक गई और हँसने लगी।

"आज तुम्हें कॉलिज नहीं जाना है, तारा?"

"जी नहीं करता। सवेरे आते समय वार्डन से कह आई थी। आज मैं आपके ही पास रहूँगी, दीदी!"

"स्वरों की साधना करनी है?"

"जी नहीं···बड़ी गरम-गरम कॉफी पीनी है।" और तारा ने मुस्कराकर तानपुरे के एक दो तार छू दिए।

"माँ शायद नीता को स्कूल छोड़ने गई है। अभी आकर कॉफी बना देगी। नहीं तो मैं बना दूँ?"

"ऊँ हूँ···अच्छा, दीदी, तब तक मैं राजेन्द्र और राजन को टेलीफोन कर आऊँ, फिर सब मिलकर कॉफी पिएँगे।"

"तारा···!"

"जी···!"

"तुम्हें राजेन्द्र से क्या कहना है?"

"कुछ नहीं।"

"इमली के पत्ते दोगी उसे?" अशू मुस्करा दी।

"नहीं, नहीं, इतनी बेलिहाज तो नहीं हूँ मैं। और वह बात तो मुझे अब याद भी नहीं थी, और फिर उसने कौन-सा सच सच ही लिखा था जो मैं उसे सच मान लूं।"

"फिर···?"

"फिर क्या बस कॉफी पिएंगे। जी किया तो कुछ हँस लेंगे। हाँ, सच, ग्वालियर से लौटकर राजेन्द्र आपसे मिले

नहीं ?"

"नहीं ।"

"मुझे मिले थे । असल में आप से वह कुछ डरते हैं, इसीलिये नहीं आए होंगे । बुला लूँ ?"

"क्या फायदा ।"

"यह नफे नुकसान के सवाल मुझसे नहीं हल किये जाते, दीदी ! नहीं फायदा तो न सही । राजन को तो बुला लूँ ?"

"जैसी तुम्हारी मर्जी ।"

"उसकी बारी मेरी मर्जी ?" तारा हँसने लगी ।

"नहीं, राजेन्द्र की बारी भी तो मैंने तुम्हारी मर्जी ही कहा था ।"

"पर राजन तो आपको अच्छा लगता है, दीदी !" तारा फिर हँस दी ।

"सभी अच्छे हैं...।"

"यह अच्छा लगना कुछ खतरनाक भी होता है, दीदी ! भला मैं आजमा कर तो देखूँ राजन हैं कितने पानी में ।"

"तारा...!" अशू ने हैरानी से तारा के मुख को ओर देखा ।

"अगर सही सालिम निकले तो आपके, और जो टूटे फूटे निकले तो मेरे ।" तारा ठहाका मारकर हँस पड़ी, "पर मेरी तो कोई चीज भी नहीं होती बस वैसे ही जरा देखूँगी...।" कहते-कहते तारा उठ खड़ी हुई, "पर सही सालिम भी कुछ नहीं होता, दीदी...!" जाते जाते तारा ने हँसकर कहा ।

तारा चली गई थी और अशू अब कमरे में अकेली थी ।

अशू को लगा जैसे उसके साज पर से किसी ने सब तार उखाड़ दिये हों और उसके हाथ में कुछ लकड़ी के टुकड़े और तारों के उलझे हुए गुच्छे रह गए हों।

जब कभी भी अशू को ऐसा लगता था, वह अपनी माँ की डायरी निकाल कर पढ़ा करती थी। आज भी अशू अपने साज के उखड़े हुए तारों को देखती रही, देखती रही, और फिर उसने मेज के ऊपर बने हुए चिनार के पत्तों को हटा कर मेज के खाने में से वह पुस्तक निकाल ली।

अशू के पोटों में एक कंपकंपी-सी थी जिसमें उसके मन की विचलता दीख रही थी। दोनों हाथों में पुस्तक को लेकर उसने उसे ऐसे खोला मानो उसमें लिखे वाक्य में उसका पूरा हल दिया हुआ था।

"कल्पना के शिखर पर रह कर जीनेवाले व्यक्तियों को जब धरती की ठोकरें लगती हैं, उनकी चोट का कोई अनुमान नहीं किया जा सकता। यह ठीक है जिन्होंने कल्पना की ऊँचाइयाँ न देखी हों उन्हें बड़ी ठोकरों का खतरा नहीं होता, उनका जीवन आसानी से और हमवार गुजर जाता है; उनकी रातें निद्राहीन नहीं होतीं, उनकी भावनाओं से लहू नहीं टपकता। पर जिन रातों में सुपने नहीं जागते वह यदि नींद के अंधकार में बीत जाती हैं तो उनका मूल्य क्या? कल्पना के शिखरों पर कुछ क्षण खड़े हो लेना ही जिन्दगी है; यह और बात है कि इन कुछ क्षणों का बहुत भारी मूल्य देना पड़ता है। और फिर भारी मूल्य दिलों की अमीरी के बिना नहीं दिए जा सकते...।"

अशू को लगा मानो किसी ने तारों के उलझे हुए गुच्छे को खोल कर उन्हें लकड़ी के टुकड़ों पर इस तरह बाँध दिया हो कि फिर इनसे छूकर जाती हुई हवा भी एक राग बन जाए। अशू ने कलम उठाई और अपनी माँ की डायरी खोलकर उसके पन्ने पर लिख दिया "सरगम"।

आज अशू ने अपनी माँ की लिखी हुई पुस्तक का नाम रखा था और उसे लगा, इस नाम में उसे जीवन का भेद मिल गया है, उसके सारे प्रश्नों का उत्तर, उसकी सारी राहों की एक मंजिल··

चिनार के चौड़े पत्तों के नीचे उस पुस्तक को रखते हुए और फिर उन पत्तों को जोड़ते हुए अशू को लगा, सफलताएँ और असफलताएँ केवल हवा के ठंडे और गरम झोंके हैं जो आते हैं और गुजर जाते हैं, पर एक राग का अपने स्वरों के साथ जुड़े रहना ही उसके जीवन का सबसे बड़ा सच है। उसके स्वर, उसकी सरगम······

६

क्षितिज

"अशू जी ! इतनी दूर क्या देख रही हैं ?" अशू को अपने दाहिने कंधे पर किसी का साँस छूता हुआ मालूम हुआ, और जैसे हल्की-सी फूँक से बाँस के टुकड़े में स्वर जाग उठते हैं वैसे ही ये शब्द अशू के कानों में पड़े।

अशू को लगा मानो वह पीतल के तारों वाला एक साज हो जिसके तारों को, हवा के झोंके की भाँति किसी की साँस कभी-कभी आकर छू लेता हो। उसे लगा वही तार झनकार उठे हैं। वही साँस उसके दाहिने कंधे पर छू रहा है।

"राजन बाबू ! मुझे ऐसा अनुभव होता है जैसे वहाँ क्षितिज पर एक घोंसला बना हुआ हो···।"

"और उस घोंसले में कौन रहता है, अशू जी !"

"कोई भी नहीं, राजन बाबू ! अगर वह घोंसला बन सकता है···पर कई घोंसले कभी किसी को आसरा नहीं देते, चाहे वह अपनी तीलियों को इसलिये जोड़ते हैं कि वह किसी के लिये छत बन सकें, किसी के लिये दीवारें बन सकें,

ग्रौर···।" ग्रशू हँस दी, "दीवार, छतें, परकोटे, क्या यह सब जीवन की ग्रावश्यकताएँ हैं। जीवन तो फिर कुछ भी न हुग्रा। जीवन को ग्रपने पैरों पर विश्वास नहीं होता, वह सहारा ढूँढ़ता है। पर यह तो दासता है, सहारे की दासता··· दासता मनुष्य की प्रकृति है···सबसे बड़ी दासता तो मनुष्य की भूख है जो उसे रोटी का दास बनाती है ग्रौर वह ग्रभागा जन्मते ही खाने का ज्ञान लेकर पैदा होता है। भला इसे दूध की पहली घूंट का ज्ञान कौन दिलाता है ?···यह ज्ञान वह ग्रपनी माँ के रक्त से लेकर ग्राता है, सबसे पहली दासता, ग्रौर इससे भी पहले एक ग्रौर फिर ग्रनेक प्रकार की दासताग्रों की लड़ी बन जाती है।"

"ग्रौर ग्रगर इन दासताग्रों की लड़ी का नाम ही जीवन है तब किसी रंगीन घोंसले की दासता ही क्या बुरी है ?"

"ग्रच्छाई ग्रौर बुराई में कोई ग्रन्तर नहीं होता, राजन बाबू, केवल मात्रा का ग्रन्तर होता है। मनुष्य का जन्म उस की सबसे बड़ी कैद है, पर जब उसे घर-बार ग्रौर रोटी की कैद में रहने की ग्रादत हो जाती है, तब धीरे-धीरे उसके रक्त में रची हुई दासता दासता की ग्रादत को पक्का बना देती है, ग्रौर मनुष्य ग्रौर कैदें भी बटोर लेता है। समाज का ग्रस्तित्व भी एक ऐसी ही दिलचस्प कैद है, जिसके रंगीन फन्दों में मनुष्य की ग्राँखे ग्रनेक रंगों में कैद हो जाती हैं ग्रौर फिर धीरे-धीरे परचकर ग्रागे बढ़कर उस ग्रादत को ग्रपने जीवन की ग्रावश्यकता बना लेती हैं।"

"पर जब इन ग्रावश्यकताग्रों का मोहताज ही बनना है,

तब फिर मोहताजी क्या कम क्या ज्यादा।"

"केवल मात्रा का अन्तर है, राजन बाबू! मैं कह रही थी कि सामाजिक सिद्धान्तों की कैद भी कैद होती है, पर प्रायः लोग उस कैद से विद्रोह नहीं करते।"

"क्योंकि वह कैद जीवन को आसानी से बिताने के लिये सहूलतें देती है। समय के अनुसार कैद के ढंग भी बदलते हैं क्योंकि सहूलतों का मूल्य बदल जाता है, और वैसे जलवायु के अनुसार भी कभी किसी के मूल्य एक से नहीं होते। जैसे ठंडे और गरम देशों के लोगों के रंग अलग-अलग होते हैं, वैसे ही उनकी आवश्यकताएँ भी अलग-अलग होती हैं। वह आवश्यकताएँ ही तो समाज के सिद्धान्त बनाती हैं।"

"पर कई बार सिद्धान्त आवश्यकताओं के अनुसार नहीं बनाए जाते, बल्कि आवश्यकताओं को सिद्धान्तों के अनुसार काता बुना जाता है।" अशू हँस दी। हँसना मानो एक विश्रान्ति-कक्ष हो और वह कभी चलते-चलते उस विश्रान्ति-कक्ष में खड़ी होकर थोड़ा साँस ले लेती हो।

"केवल मात्रा का अन्तर है, राजन! मनुष्य जब समाज का दास हो जाता है वह प्रायः हँसकर अपनी कैद काट देता है। पर जब वह समाज किसी और समाज का दास हो जाता है और जब कोई देश किसी और देश के शासन के नीचे आ जाता है, तब देशों और जातियों का सम्मान जाग उठता है, तब अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये देश-भक्ति के जाम पियें जाते हैं, तब देश के यौवन को चल रहे युद्ध में भेजा जाता है, और फिर राजन बाबू, राजन जैसे कवि राष्ट्रीय गीतों को

जन्म देते हैं।" अशू के साथ राजन भी हँसने लगा।

"है न केवल मात्रा का अन्तर! अधिक मात्रा की दासता क्रान्ति को जन्म देती है और कम मात्रा की दासता मनुष्य की दासता की प्रवृत्ति को और पक्का कर देती है।" अशू ने कहा।

"फिर उस मात्रा के नाप तोल का जो भी यन्त्र होगा उसी का नाम सामाजिक सिद्धान्त हो जाएगा।"

"पर कठिनाई तो यह है कि समाज के ये सिद्धान्त जो एक व्यक्ति के लिए न्यायपूर्ण सिद्ध होते हैं दूसरे के लिए अन्यायपूर्ण और फिर चक्र उल्टा चलता है। सिद्धान्तों को मनुष्य के लिये नहीं बरता जाता, बल्कि मनुष्य को सिद्धान्तों के लिये।"

"यह ठीक है, अशू जी! और मनुष्य जब से समाज के इस ढाँचे में आया है वह स्वयं ही इसका कर्त्ता है और स्वयं ही इसका कैदी।"

"पर सचाई तो कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसके रूप रंग के सम्बंध में एक सर्वसम्मत निर्णय किया जा सके। अलग आकृति की भाँति सब मनुष्यों के दिमाग की बनावट भी अलग-अलग होती है और एक का वर्णन दूसरे के वर्णन से नहीं मिलता।"

"और जो बात किसी व्यक्ति को ठीक प्रतीत होती है, उसके लिये वही ठीक होती है चाहे किसी दूसरे के लिए वह एक गुनाह की हद तक गलत हो।"

"पर हमारी वैयक्तिक स्वतंत्रता इतनी महान नहीं है,

राजन बाबू ! कि इस सिद्धान्त को सरलता से व्यवहार में लाया जा सके। सामाजिक सिद्धान्तों का घेरा हमारा साँस घोंट देता है, पत्थर के कोयलों की भाँति…।"

"पर जब यह धूँआ खुली राह पर फैल जाता है हमारे साँस को कुछ नहीं कहता। जब यह बन्द दरवाजों से टकरा कर हमारे मुँह पर आता है तब…।"

"बन्द दरवाजे से आप का अर्थ अगर किसी के बौद्धिक अवमान से है तब आपने यह तुलना ठीक की है, राजन बाबू ! पर अगर इससे अर्थ एक वैयक्तिक सम्बंध का सामाजिक सम्बंध से मेल है तब, क्षमा कीजिये ये दरवाजे और खिड़कियाँ भी अपने काम में समाज की ही एक रचना है जिन्हें किसी अशू के हाथ खोल नहीं सकते, या किसी राजन की उँगलियाँ बन्द नहीं कर सकतीं।"

"यह ठीक है, अशू जी !"

"आपका यहाँ मेरे पास खड़े होना अगर आपकी या मेरी दृष्टि में ठीक भी है तब भी तोलनेवाले इसे हमारे मूल्यों से नहीं जाँचेंगे वह तो समाज के प्रचलित बट्टों से ही इसे तोलेंगे।" अशू हँस पड़ी और हँसते-हँसते कहने लगी, "यह सब कुछ केवल इस बात पर निर्भर है कि हमारे वैयक्तिक मूल्य कहाँ तक सामाजिक मूल्यों से समझौता कर सकते हैं। फिर वही मात्रा वाला प्रश्न आ जाता है। आखिर जीवन अपने चारों ओर के वातावरण के साथ एक समझौता ही तो होता है। समाज तो बहुसंख्या के सिद्धान्त पर ही चल सकता है। और वह कर भी क्या सकता है। आखिर समाज है भी

क्या, मेरा आपका और दूसरों का एक समूह। इस समूह में अगर बिचारी अशू की बहुसंख्या नहीं तो इसमें समाज का क्या कसूर। अब समाज के अलग-अलग प्रकार के व्यक्तियों को तोलने के लिए अलग-अलग बट्टे तो बनाएगा नहीं, जो अल्प संख्या में हैं उन्हें समझौता करना ही पड़ेगा।"

"तो अब हमें समाज से क्या समझौता करना चाहिए ? क्या मुझे यहाँ आपके पास नहीं खड़े होना चाहिए, अशू जी ?"

"मेरा विचार है अभी समझौता करने वाली दशा नहीं आई है। अभी मेरे लिए इतना-सा विद्रोह चल सकता है। मेरी दशा एक साधारण घर की साधारण लड़की से बहुत अलग है। आखिर मैं एक नाचनेवाली की बेटी हूँ और हमारा समाज जो लांछन मेरी माँ पर लगा चुका है, मेरा विचार है वह मेरे ऊपर भी लागू रखना चाहेगा।"

"नहीं, अशू जी, आपका जीवन बड़ा सुखमय होगा।"

"सुख से आपका अभिप्राय अगर यह हो कि समाज मेरे प्रति न्याय करेगा, तो केवल यह न्याय प्राप्त कर लेना ही मेरे लिए सुख नहीं। आखिर किसी से न्याय की भिक्षा माँगनी भी तो एक अति की दासता है। अभी मैंने अपने आपको इस दासता के लिए तैयार नहीं किया है।" अशू खिलखिला कर हँस पड़ी। "लेकिन कुछ लोगों को, मुझ जैसों को, क्षितिज पर घोंसला बनाने में आनन्द आता है।"

"क्षितिज हम में से बहुतों की मंजिल है…।"

"पर क्षितिज वह जादू है, राजन बाबू ! जो केवल दूर से ही दिखाई देता हे, लगता है मानो धरती ने दोनों बाहें

ऊपर उठा दी हों और आकाश ने दोनों हाथ धरती की ओर झुका दिये हों...।" अशू ने अनुभव किया कि राजन का साँस उसकी गर्दन को छूकर उसके गले की मुख्य नाड़ी में उतर गया था। पर अशू ने अपनी आवाज को काँपने नहीं दिया। वह बोली, "धरती और आकाश तो यहाँ भी मिले हुए हैं, यहाँ जहाँ हम दोनों खड़े हैं। यह भी क्षितिज है पर यहाँ हमारी आँखें हमें क्षितिज नहीं देखने देतीं। वह केवल दूर से ही दिखाई देता है और ज्यों-ज्यों हमारे पैर आगे बढ़ते हैं, क्षितिज और दूर होता जाता है।"

"क्या पैर कभी उस घोंसले तक नहीं पहुँच सकते, अशू जी ?"

"शायद कभी नहीं। पर एक चीज वहाँ पहुँच सकती है और उस घोंसले में घर भी बना सकती है।"

"केवल कल्पना ही।"

"हाँ !"

"पर आखिर हम धरती के जीव हैं, धरती का आसरा चाहते हैं। जब तक हमारे पैरों का हमारी धरती से कोई समझौता नहीं होता, तब तक हम कल्पना की दुनिया बसाते हैं। वह दुनिया केवल इस दुनिया के अनमेल का प्रतिशोध होती है।"

"यही सही। पर कोई क्या करे जब दुनिया के प्रचलित मूल्य किसी पर पूरे न उतरें।"

"लेकिन केवल कल्पना शान्ति नहीं, अशू जी !"

"जीवन भटकने का दूसरा नाम है, राजन बाबू ! जैसे साँस का चलते रहना जीवन है और शान्ति से खड़े हो जाना

मृत्यु, वैसे ही भटकन का समाप्त होना साँस चुकने से पहले सम्भव नहीं। पूर्ण शान्ति मृत्यु का दूसरा नाम है, राजन बाबू !"

"पूर्ण शान्ति न सही, पर जीवन निरा भटकन भी नहीं है। जीवन भटकन और शान्ति का संगम है, अशू जी !"

संध्या गहरी हो रही थी और डूबते सूरज की लाली क्षितिज से परे हट कर एक अंधकार-सा डालती जा रही थी। अशू खड़ी थी और अशू के दाहिनी ओर, कुछ पीछे हटकर, राजन खड़ा था। फर्श ने ठंडे होकर उनके पैरों के नीचे से शाम की पहली ठंड का उन्हें अनुभव कराया जिसके साथ ही अशू ने अपने शरीर को अपने विचारों में से झटकारा और हँसकर कहने लगी :

"इस समय तो प्रकृति की यह शक्तियाँ मुझे मेरा घोंसला भी देखने नहीं देतीं, चलिए कमरे में चलें और इस ठंड की दासता करें। दीवारों का सहारा ले लें।"

"कल्पना के पंख उड़-उड़ कर हार जाते हैं, अशू जी, पर धरती की एक ही टहनी उन्हें आसरा दे सकती है।" और दोनों मकान की ऊपर की छत से नीचे आने के लिए सीढ़ियाँ उतरने लगे।

दासताएँ बहुत सी हैं राजन बाबू ! केवल मात्रा का प्रश्न ही कई बार तंग करता है। सोचती हूँ, अच्छा है जहाँ तक यह मात्रा कम हो सके। धरती की किसी टहनी से आसरा न माँगना पड़े।" कहते-कहते अशू नीचे की छत पर अपने गोल कमरे तक पहुँच गई। राजन उससे केवल एक या दो कदम

पीछे था ।

अशू फिर कहने लगी, "पशु मनुष्य, देवता, ईश्वर—ये सब मनुष्य के ही नाम हैं । यहाँ भी आ गया न वही मात्रा का प्रश्न !"

"फिर ऐसी ही किसी मात्रा के अनुसार धरती और आकाश के सम्बन्ध में एक समझौता हो सकता है । न निरी कल्पना, न निरे धरती के मूल्य···।"

"केवल क्षितिज, क्षितिज ही दो अलग-अलग चीजों को जोड़ता है और दो चीजों का संगम बन कर भी दिखाई नहीं देता ।" अशू खिलखिला कर हँस पड़ी ।

"कॉफी पिएँगे ?···" अशू ने पूछा और साथ ही कहने लगी, "क्षितिज पर बने हुए घोंसले की रंगीन कल्पना और कॉफी के गरम प्याले में से उठती हुई सुगन्ध ही तो जीवन की वास्तविकता नहीं, राजन बाबू, वास्तव में हल की नोक से धरती की तह में से गेहूँ उगा लेना जीवन की वास्तविकता है ।"

"बड़ी कवितामयी वास्तविकता है ।" राजन हँस पड़ा और हँसते-हंसते कहने लगा, "अशू जी ! अगर आप मिट्टी में अटे हुए किसानों को हल चलाते, बीज डालते और गुड़ाई करते देखें तो पसीना टपकाते हुए माथों को देखकर कल्पना का सारा नशा उतर जाएगा ।"

"इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि वह पसीना और वह मिट्टी ही जीवन की वास्तविकता है ।"

राजन की आँखों से एक ज्योति निकलकर अशू की आँखों में समा गई और अशू को लगा दूर क्षितिज पर धरती और आकाश मिल रहे हैं ।

७

दीपक

रात का पहला पहर माँ ने अशू के सिरहाने बैठ कर काट दिया था। कई बार अशू के तपते हुए माथे को माँ ने अपनी उँगलियाँ से छुआ था। चार पाँच बार गुलाबजल पड़े हुए ठंडे पानी में रूमाल भिगो कर माँ ने हल्के से अशू के माथे को पोंछ दिया था और गोला रूमाल उसके सिर पर डाल दिया था। फिर दोनों हथेलियों से अशू के माथे को दबा कर देर तक उसे सुलाती रही थी।

रात की अनिद्रा ने माँ को सबेरे तड़के ही न जागने दिया। तारा की आवाज के साथ उसकी आँख खुली।

"बड़ा जुल्म किया है, अशू जी! आपके हाथ भी अभी तप रहे हैं। लगता है आपको सारी रात बुखार रहा है और ऊपर से आप गुसलखाने जाकर नहा आई हैं।"

माँ चौंककर उठी। अशू के पास उत्तर देने को कुछ नहीं था। शायद खड़े होने की भी उसमें शक्ति नहीं थी, वह थकी-सी हुई खाट पर लेट गई।

माँ ने कुछ कहा नहीं पर, अगर कोई उसकी आँखों की ओर देखता उन्हें छलाछल भरी हुई पाता। माँ ने अपनी आँखें अशू के मुख की ओर से हटा लीं और जल्दी से रसोई में चाय बनाने चली गई।

"दीदी, आत्महत्या करने का और कोई रास्ता नहीं था क्या?"

"नहीं, तारा यह बात नहीं···।"

"फिर?"

"मुझे अपने से एक ग्लानि-सी आ रही थी···।"

"ग्लानि?"

"मेरे पास आनेवाला, मुझसे बात करनेवाला···।"

"बस भी कीजिए, दीदी! आपके पास आनेवालों के कालिख लग जाएगी, आपसे बात करनेवालों का नाम बदनाम हो जाएगा, आप यह कह रही हैं न,···जिनके रंग इतने फीके हों, जिन पर उड़कर कालिख चढ़ जाती हो, वह अपने रास्ते जाएँ, वह अपना नाम संभालें, उन्हें अपनी आबरू···।"

"तारा···तारा···!"

"आप कच्चे रंगों को उत्तर क्यों नहीं जाने देतीं, दीदी!"

"मैं क्या कहूँ···।"

"आप कुछ न कहें, पर आपका बुखार से तपता हुआ माथा तो कह रहा है···।"

"कुछ नहीं, तारा···भला मैं उससे कुछ कहती जो वह जाते समय···जाते समय एक बार···।"

"राजन आपसे मिलकर जाता···आपके दरवाजे में आते

अगर कोई उसे देख लेता ? पाँच सौ महीने की नौकरी··· अमीर पत्नी···कलकत्ते जैसे रंगीन शहर में कोठी···आखिर ये चीजें इतनी सस्ती नहीं···।"

"बस करो, तारा !"

"दीदी, आप उसके गीतों को केवल गा सकती हैं, खरीद नहीं सकतीं···।"

"गीत बिकते भी नहीं, तारा ! गीत मर जाते हैं, पर बिकते नहीं···।"

"गीत शायद उड़ नहीं सकेंगे, दीदी, पर उनके पंख सोने के हो जाएँगे, वह किसी कोठी का सिंगार बन जाएँगे, वह किसी महफिल की रौनक बन जाएँगे, वह किसी···।"

"चुप भी रहो, तारा ! ईश्वर के लिए अब और न कहो···।" अशू की आवाज बिलकुल प्रार्थना बन गई थी।

"राजन के कलकत्ते जाने का कब पता चला, दीदी ?" तारा ने ठहर कर पूछा।

"कल।"

"क्या राजेन्द्र ने बताया ?"

"हाँ।"

"मुझे राजेन्द्र ने अभी टेलीफोन किया था। अगर मुझे कल पता चल जाता तो मैं रात को ही आपके पास आती। राजेन्द्र कह रहे थे कि गुणीता के पिता ने राजन को इसी शर्त पर नौकरी दी है कि वह गुणीता से शादी कर लेगा···।"

"मुझे यह सब बताओ, तारा···!"

तारा चुप हो गई।

थोड़ी देर बाद अशू बोली, "पर उसने जाते समय मुझसे कुछ कहने की आवश्यकता भी न समझी...।"

तारा ने अशू के मुख की ओर देखा और उसकी आँखें भर आईं।

माँ ने चाय मेज पर रख दी थी। तारा ने चाय का गरम प्याला अशू की ओर बढ़ा दिया। अशू ने चाय का एक घूँट भरा और फिर तकिये पर सिर रखकर बच्चों की तरह सिसकने लगी।

"बहुत गीत लिखना, मेरे कवि !...बहुत गीत...उस प्रीत के गीत लिखना, जिसे तुमने अपने पैरों तले रौंद डाला...उन अरमानों के गीत लिखना जो तुम्हारे दिल में कभी न आए...उन सुपनों के गीत लिखना, मेरे कवि जो कभी तुम्हारी आँखों में बसे नहीं...उन इंतजारों के गीत लिखना, मेरे कवि, जिन्हें तूने नहीं जाना...उन व्यर्थ कामनाओं के गीत लिखना, मेरे कवि, जो कभी तेरे हृदय में नहीं आईं...।"

दीदी, दीदी,...मेरी प्यारी दीदी, अपने-आप को यों न घुलाओ...।" तारा ने अशू को अपनी बाहों में कस लिया।

"मुझे एक बार जल लेने दो, तारा ! फिर मैं बुझे हुए दीये की तरह खामोश हो जाऊँगी...कोई शिकवा नहीं...कोई शिकायत नहीं होगी, तारा...फिर कभी नहीं बोलूँगी...और अशू बिलख उठी।

"राजेन्द्र बाबू आए हैं।" दासी ने आकर कहा।

"मेरे पास कोई न आए, कभी न आए, मैं किसी से मिलना नहीं चाहती...।" अशू जैसे तड़प उठी हो।

८

सलाम

आशू के घर लोग प्राय: आते रहते थे । कभी किसी कालेज के प्रोफेसर या किसी स्कूल की साहित्यिक सभा के विद्यार्थी अपने कालेज या स्कूल के वार्षिक जल्से में बुलाने के लिये आते । कभी शहर की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं के कार्यकर्त्ता त्यौहारों, उत्सवों के अवसर पर आयोजित समारोहों में आमन्त्रित करने आते । कभी क्लबों के सदस्य और कर्मचारी अपने विशेष दिवसों के कार्यक्रमों में सम्मिलित होने की प्रार्थना लेकर आते ।

पर आज जो व्यक्ति अशू से मिलने आया, उसकी आयु से तो अशू ने उसे एक विद्यार्थी समझा, पर शक्ल से वह अशू को एक गम्भीर व्यक्ति जान पड़ा ।

आते ही सबसे पहले उसने अशू को सम्बोधन करते हुए कहा, "दीदी ! दीदी, आप बड़ी-बड़ी जगहों पर गाती हैं, बड़े और अमीर लोगों की सभाओं में, पर आज आपको हमारे साथ मिलकर देश के साधारण लोगों के लिए गाना पड़ेगा ।"

अशू को लगा मानो आगन्तुक उसका छोटा भाई हो, सगा भाई। न उसका मुख अपरिचित-सा था, न उसकी बोली में परायापन था। कानों में उतरते-उतरते 'दीदी' शब्द अशू के दिल में उतरता जा रहा था। इससे पहले कभी किसी ने यों नहीं बुलाया था। उसने कभी किसी बुलानेवालों के मुख पर इतनी अम्लानता भी नहीं देखी थी और न उसे किसी का स्वर इतना मधुमिश्रित प्रतीत हुआ था।

अशू के चुप रहने से कहनेवाले को लगा कि जो कुछ उसे कहना था वह अभी नहीं कह सका है।

"दीदी, मुझे सलाम कहते हैं।"

"सलाम!"

"जो लोग हिन्दुस्तान छोड़कर नहीं जा सके मैं उनमें से हूँ।"

अशू को अपने देश का विभाजन याद आ गया। उस समय जो तूफान आया था उसकी याद से अशू काँप गई।

"आप और आपके घर के लोग यहीं रहते हैं, दिल्ली में?"

"मैं लुधियाने का रहनेवाला हूँ। मेरी माँ वहाँ रहती थीं, अकेली। लेकिन मैं अपनी सभा के काम की वजह से दिल्ली रहता था, और माँ मेरी···माँ···।" सलाम चुप हो गया।

"अब वह दिल्ली आ गई हैं?"

"नहीं, दीदी···नहीं। आप तो जानती ही हैं, हमारे यहाँ के लोग पागल हो गए थे···।"

"उन्होंने···"

"उन्होंने मेरी माँ को—अपने देश की एक माँ को—मार डाला...।"

अशू इस नवयुवक के पत्थर-से कलेजे को चकित देखती रही। कितनी ही देर बाद बोल सकी :

"आप फिर भी हिन्दुस्तान छोड़कर नहीं गए ?"

"कहाँ जाता, दीदी ? दूसरी तरफ भी तो लोगों ने अपने देश की माँ को इसी तरह मारा था...।"

"कितना साहस किया आपने !"

"यह मेरा इम्तहान था, दीदी, मेरे मनुष्य होने का इम्तहान, और मैं इसमें फेल नहीं हुआ।"

अशू कुछ बोल नहीं सकी। उसे लगा आज पहली बार उसने एक मनुष्य देखा है।

"हमने, दीदी, जनता के लिए जनता की एक सभा बनाई हुई है।"

"आप जैसे और भी व्यक्ति हैं ?"

"मैं तो कुछ नहीं, दीदी ! मुझमें तो कई कमजोरियाँ हैं पर मैं अपने डाक्टर दादा से हमेशा सीखने की कोशिश करता हूँ...।"

"डाक्टर दादा ?"

"हमारी सभा उन्होंने ही बनाई है। वह हमारी सभा की जान हैं, हमारी सभा उन्हीं का दूसरा नाम है...।"

"बड़े अच्छे आदमी होंगे...।"

"मनुष्य में मेरा विश्वास न रहता अगर मैं डाक्टर दादा को अपनी इन आँखों से न देख लेता।"

"आपकी सभा का काम क्या है ?"

"सोचते हैं मनुष्य आप जीना सीखे और औरों को जीने दे ।"

अशू आश्चर्यचकित थीं ।

"आप अपने ही लोगों के लिए गायेंगी न, दीदी ?"

अशू नहीं जानती थो उसके अपने लोग कौन थे । जिन लोगों को उसने आज तक देखा था, वह उसके लोग नहीं थे, उसके अपने लोग नहीं थे ।

अशू ने कहा, "मैं अपके लिए गा सकती हूँ, आप जैसों के लिए गा सकती हूँ ।"

सलाम के मुँह पर रौनक आ गई, और फिर सम्भल कर उसने कहा, "अगले हफ्ते हम पंजाब के एक गाँव में जल्सा कर रहे हैं । वहाँ के मज़दूरों और किसानों के बीच हम बैठेंगे, हम उनके लिए गायेंगे, उनके अधिकार के लिए गायेंगे···वह अपने अधिकारों के लिए उठेंगे···उनकी जमीनें उनको लौटेंगी···और दीदी ! रक्त चूसनेवाले साहूकार अब उनके हाथ की रोटी नहीं छीन सकेंगे । देश को स्वतन्त्रता मिली है, पर केवल हस्तान्तरण से तो कुछ नहीं होता, दीदी, जब तक कि उन हाथों के काम न बदलें···लोगों का रंग गोरा हो या काला, जनता को क्या ? जनता का लहू लाल है, शुद्ध है··· उस लहू को बचाना होगा, दीदी···!"

अशू ने आँखों में ढुलकते हुए आँसू सम्भाल लिये और बोली, "आप जहाँ कहेंगे मैं गा दूंगी···।"

"धरती के गीत···धरती के बेटों के गीत···उनकी किस्मत

के गीत…।" सलाम ने कहा, और फिर कागजों पर लिखे हुए तीन गीत अशू को देकर बोला, "ये गीत हमारे दादा ने लिखे हैं…।"

अशू ने गीत ले लिये।

"इन गीतों में जान पड़ जायगी, दीदी, जब आप इन्हें गायेंगी।"

"मैं जरूर गाऊँगी।"

छठे दिन सभा की लारी जिस समय नीलोखेड़ी पहुँची, वहाँ लोगों ने पहले से ही एक खुले मैदान में दरियाँ बिछा रखी थीं, कई तख्त जोड़कर एक ऊँचा मंच बनाया था, गाँव के रास्तों पर छिड़काव किया था। लोगों के चेहरे चमक रहे थे।

लारी में बैठी हुई अशू रास्ते में सलाम से पूछती आई थी। "डाक्टर दादा साथ क्यों नहीं आए?…क्या पहले ही पहुँच गए हैं? कैसे हैं वह?…बहुत अच्छा बोलते हैं?… लोग मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं?…पर वह दस-बीस-पचास आदमियों के साथ मिलकर क्या कर सकेंगे?…"

फिर अशू ने सैंकड़ों लोगों को दरियों पर बैठे हुए देखा। और फिर एक व्यक्ति मंच पर आया।

…अशू सब कुछ न तो सुन सकी, न समझ ही सकी। पर जितना कुछ उसने सुना वह भूमि पर किसानों की अपनी मिल्कियत के सम्बन्ध में था। पर अशू को विश्वास नहीं होता था कि किस प्रकार बरसों, सदियों के पड़े हुए जागीरदारी के जूए लोगों के कन्धों पर से उतर जायेंगे…अशू यह सब बातें कहनेवाले का मुँह तक रही थी, डाक्टर दादा का मुँह

…वह एक पतला, तीखा और सांवला, किन्तु लोहे जैसा मजबूत मुँह था…और फिर अशू ने सैंकड़ों सुननेवालों के मुँह देखे। सब मुखों पर यह विश्वास दीख रहा था कि यह जो कुछ कहा जा रहा है, हो कर रहेगा, निश्चत रूप से होकर रहेगा।…फिर भी अशू की समझ में कुछ नहीं आया। पर उसे डाक्टर दादा का लोहे जैसा मजबूत मुँह अच्छा लगा, और किसानों और खेती के मजदूरों का उन पर विश्वास अच्छा लगा।

फिर अशू ने सैंकड़ों सुननेवालों के विश्व सपूर्ण मुँह के सामने खड़े होकर गाया…

मेरा हिन्दुस्तान…

सभा के सात नौजवान अशू के पीछे खड़े हुए थे, उन्होंने इस बोल पर अपनी आवाजें भी साथ मिलाईं और आकाश में यह शब्द गूँज उठे :

मेरा हिन्दुस्तान…
जाग उठे धरती के बेटे
जाग उठा वरदान
जाग उठी पूरब में लाली
जाग उठा इन्सान…

और अशू को लगा सामने वैठे हुए सैंकड़ों सुननेवालों में इन्सान जाग उठा है…

और लोगों ने भी गाने गाए, भंगड़ा नाचा, और अब अशू की बारी फिर आई तो लोगों ने तालियाँ बजाकर उसका स्वागत किया। अशू को लगा, आज पहली बार उसकी

आवाज में शक्ति आ गई है :

भरपूर जवानी खेतों की
भरपूर जवानी हो—
गट्टे गट्टे खेत जो थे
वह घुटने घुटने बड़े हुए
मोती जैसे दाने पड़ कर
बाली बाली खड़े हुई
भरपूर जवानी हो—
मुखिया में चर्चा यह फैली
कौओं को भरमार हुई
ढेर लगा कर हम सब हारे
कौओं की पौबार हुई
भरपूर जवानी हो—
हाट गए बाजार गए हम
ढूँढ़ ढूँढ़ कर हार गए हम
ऊँचे महल गए जो दाने
नहिं दीखे, बेजार हुए हम
भरपूर जवानी खेतों की
भरपूर जवानी हो—

तालियों की गड़गड़ाहट में ही अशू ने तीसरा गीत आरंभ किया। तारा उसके साथ गा रही थी और उसके साथ सभा की पाँच लड़कियाँ और थीं। गीत की पंक्तियाँ पहले अशू गाती थी, फिर सब लड़कियाँ उसी बोल से आकाश को गुँजा देती थीं। गीत का भाव इस प्रकार था :

मैं खेत में सीपी जैसे बीज और मोती जैसे दाने डालती हूँ। आज किसान सब एक हो गए हैं। जोर जुलम करने

वालो लौट जाओ ।१।

ओखली में धान ऐसे छड़ा जाता है, मूसल ऐसे चलाया जाता है कि झूठ और सच की, सच और झूठ को पड़ताल हो जाती है। ऐ मेरे प्रिय ! ओखली में धान ऐसे छड़ा जाता है ।२।

उसी की खेती है, उसी के खेत हैं, जिसकी गुडाई है, जिसकी कटाई है। हम धरती के हैं, यह हमारी है। ऐ मेरे प्रिय ! ओखली में धान ऐसे छड़ा जाता है ।३।

आज असाढ़ी फस्ल भी हमारी हो गई, सावनी फस्ल भी हमारी हो गई। आज धरती करवट लेगी। हम अपने भाग्य बदल देंगे। ऐ मेरे प्रिय ! ओखली में धान ऐसे छड़ा जाता है ।४।

कितने ही लोग गा रहे थे, कितने ही रो रहे थे। जिस समय अशू तालियों की गूंज में मंच से नीचे उतरी सलाम ने बच्चों की भाँति अपनी दोनों बाहें अशू के गिर्द डाल दीं, "मेरी दीदी ..!"

सलाम की आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं।

डाक्टर दादा ने अपना दाहिना हाथ अशू के सिर पर रखा और एक क्षण के लिए अशू को लगा मानो डाक्टर दादा का लोहे जैसा मजबूत मुँह पिघल सकता हो ..फिर डाक्टर दादा परे चले गये, फिर उनका मुँह उसी तरह मजबूत.. लोहे की भाँति मजबूत दिखाई दे रहा था।

एक बुढ़िया ने अशू को एक कटोरा दूध लाकर दिया। काँसे का चौड़ा चमकता हुआ कटोरा, दूध से लबालब भरा हुआ था। न जाने उस स्त्री का घर कहाँ था और वह किस

प्रकार अपने बूढ़े पैरों से दौड़ कर कटोरा भर कर ले आई थी—"अपनी बुढ़िया माँ के हाथ से पी ले, बेटा !...जीती रह...!" और बुढ़िया की आँखे भर आईं।

अशू को बड़े शहरों के क्लब याद हो आए जहाँ लोग भुने हुए मांस के साथ शराब के लम्बे घूंट भरते और हँसते बातें करते हुए देश के कलाकारों के गीत सुनते हैं। और यहाँ सामने खड़ी हुई यह बुढ़िया दिखाई दे रही थी जो उसका गीत सुन कर शुद्ध दूध का कटोरा भर कर ले आई थी ..अशू ने कटोरे को चूमकर सारा दूध एक साँस में पी लिया।

९

नरम डाली

"मेरी दीदी...!" तारा ने आकर अशू के गले में अपनी बाहें डाल दीं।

"तारा...!"

"मैंने कालेज में लाइब्रेरियन की जगह नौकरी कर ली है।"

"पर, तारा, तुम्हें तो बड़ी नौकरी मिलने की उम्मीद थी।"

"हाँ, दीदी...मैं ही कल उस नौकरी को लात मार कर आ गई हूँ।"

"क्यों, तारा ?"

"दीदी, आप जीत गई हैं, मैं हार गई हूँ।"

"वह कैसे, तारा ?"

"आपको याद होगा, दीदी, एक बार हमने आपस में सोचा था, मैं विष-कन्या बनूँगी, आप विषलयकरणी...।"

"हाँ...।"

"मुझ में विष तो बहुत है पर मैं विष-कन्या नहीं बन सकी।"

"वह क्यों, तारा ?"

"बहुत बड़ी फर्म की नौकरी थी, काम भी खास कुछ नहीं था। मैं उस फर्म में रिसैप्शनिस्ट हो जाती, तनख़ाह भी अच्छी थी। परसों शाम उस फर्म के मालिक ने मुझे मेरा कमरा, मेरी मेज, मेरा टेलीफोन, सब मुझे दिखाया था। दो घण्टे बैठकर मैंने काम भी समझा। फिर मालिक ने कहा कि वह मुझे अपनी कार में मेरे होस्टल छोड़ आएँगे।"

"फिर ?"

"और मोटर में मेरा हाथ पकड़कर बोले, "आज ठंड तो बहुत है पर तुम्हारा हाथ पकड़ कर ठंड नहीं लगती···।"

"फिर···?"

"वह मेरा हाथ पकड़े रहे। मैंने कुछ नहीं कहा। फिर उन्होंने सौ सौ के दो नोट मेरे बटुए में डाल दिए, "तुम्हारी तनख़ाह में से पेशगी हैं···।"

"फिर ?"

"फिर उन्होंने कहा—तनखाह की कोई बात नहीं, तुम्हें जितने पैसों की जरूरत हो ले लिया करना···।"

"फिर ?"

"कुछ नहीं दीदी, मेरे भीतर जो जहर है वह मेरे हाथों में खौलने लगा और मैंने सोचा कि मैं अपने हाथों का सारा जहर उसे पिला दूँ पर दीदी···!"

"तारा···!"

"मैं विष-कन्या नहीं बन सकती···नहीं बन सकती···।"

"मेरी तारा···!"

"जब मेरा होस्टल आ गया तब मैंने सौ-सौ के दोनों नोट उनकी कार में रख दिये और उनकी नौकरी उन्हें लौटा दी···।"

"मैं जानती थी, तारा, तुम विष-कन्या नहीं बन सकती··· कभी नहीं बन सकती···!"

"पर मैं अपने विष से इन सब पुरुषों को डस लेना चाहती हूँ, दीदी ! मुझे तो इनके मुँह ही इतने बुरे लगते हैं···पैसे की अमीरी से फूले हुए मुँह···और भोली लड़कियों के लहू से रंगे हुए उनके हाथ···!"

"तारा···मेरी तारा···।"

"मेरे जीवन की डाली पर विष-भरे फल क्यों नहीं लगते, दीदी···मेरा जी करता है कि सैंकड़ों, हजारों, लाखों आदमी मेरे विष में तड़पें···।"

"नारी की डाली पर विष के फल नहीं लगते, तारा ! वह जल की बूँद की कमी के कारण सूखते-सूखते सूख जायेगी, दुनिया की आरी से टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी, पर उसके भीतर की प्रेमिका नहीं मर सकती···।"

"आप जो चाहे कहें, दीदी ! आज मैं आपसे बहस नहीं करूँगी···मन में एक प्रकार की शान्ति आती जाती है···।"

शहर के समाचार-पत्रों में थोड़ा-थोड़ा जहर घुलने लगा। जब कहीं किसी सभा में अशू गाती और दूसरे दिन उस सभा के कार्य का समाचार प्रकाशित होता तो उसमें अशू के विरुद्ध कुछ न कुछ अवश्य होता।

पहले तो केवल यही लिखा हुआ होता कि अशू का गाना लोगों को इसलिए अच्छा नहीं लगा था कि उसने अच्छा गाया

था बल्कि इसलिए कि कलाकार देखने में सुन्दर थी। फिर इस सुन्दरता के उल्लेख के साथ अशू के चाल-चलन पर आरोप लगाते हुए लिखा जाने लगा, और फिर अशू के स्वरों को लेकर नुक्ताचीनी की जाने लगी और फिर यह नुक्ताचीनी अत्यन्त भद्दे शब्दों में होने लगी।

सलाम हाथ में अखबार लेता, उसका चेहरा गुस्से से तमतमा उठता, अखबार को मरोड़ते हुए वह अपने वश में न रहता।

"यह सब बडा दुखदायी है···बड़ा दुखदायी···हमारे देश में तो नारी होना पाप है और फिर एक कलाकार नारी।···और सलाम, मैंने बड़ी दिलेरी की थी। मैंने गजेन्द्र के वहशी हाथों को अपनी ओर बढ़ने से रोका था, उसके हाथ मुझसे अब इतना बदला भी न लें ?···वह पुरुष है···और हमारे देश में पुरुष मनमानी कर सकता है···वह जर्नलिस्ट है, अखबार उसके हाथ में है, उनके हाशिये क्यों न काले हों···

······आँखों में आते आँसुओं को तो अशू सम्भाल लेती थी, पर अपने हाथों के विवश कम्पन को नहीं छुपा सकती थी।

"मेरी दीदी···!" सलाम अपनी दीदी के काँपते हाथ पकड़ लेता।

"मेरी वजह से तुम्हारी सभा की कार्रवाइयों की भी बुराई की जायेगी। तुम अच्छा करोगे जो मुझे अपनी सभाओं में न गवाओगे, और मैं तो लोगों का कुछ सुधार भी नहीं सकती, तो फिर बिगाड़ क्यों करूँ···तुम्हारी सभा बड़े अच्छे लोगों की संस्था है···उसे लोगों के लिए बहुत कुछ करना है···।" एक दिन

अशू ने कहा !

"दीदी ! जिस दिन मेरी सभा में मेरी दीदी की कला को कला नहीं समझा जायेगा, जिस दिन मेरी सभा में नारी से सम्बन्धित मूल्य गलत हो जायेंगे, मैं उस दिन सभा को छोड़ दूँगा···।"

"डाक्टर बाबू क्या कहते होंगे···।"

"डाक्टर बाबू मनुष्य नहीं, दीदी, देवता हैं···जिस समय हमारे अखबार उन्हें गालियाँ दे रहे थे, वह इस तरह हँस दिया करते थे मानो उन गालियों की आवाज उनके कानों तक पहुँच ही न सकती हो···वह मामूली ताकत के आदमी नहीं हैं···वह क्या नहीं कर सकते···हमारे चेहरे जब गुस्से से लाल हो जाते थे वह हमें दूर गाँवों में भेज देते थे और ऐसे कठिन काम सौंप देते थे जिनके पूरा हो जाने पर सफलता के नशे में हम अपना गुस्सा पी जाते थे···पर कल के अखबार में जब उन्होंने आपके बारे में पढ़ा तब पहली बार हमने उनके चेहरे पर गुस्सा देखा, और फिर बड़ी देर तक वह किसी से नहीं बोले। कल रात उन्होंने मुझसे कहा, "अशू से कहना, घबराये नहीं। सूरज की किरण को दाग नहीं लगा करता।"

···और फिर न जाने कैसे···अखबारों का जहर उगलना कम होता गया, पहली सी खामोशी हो गयी, और फिर जहरीली हवा के स्थान पर भीनी-भीनी महक फैलने लगी।

अशू अकेली थी, अविवाहित थी और उसके जीवन की नरम डाली को कभी-कभी धमकियाँ झकझोर जाती थीं।

ये धमकियाँ नये-नये ढंग से आतीं राजेन्द्र की ही ओर से

थीं। कभी सन्देशा मिलता, "मैं तुम्हारे ऊपर एक उपन्यास लिख रहा हूँ, उसमें देखना क्या-क्या लिखूँगा।......"। कभी सुनने में आता, "इस शहर का एक-एक अखबार तुम्हारे खिलाफ लिखेगा...तुम्हारी माँ एक वेश्या की लड़की थी...शहर के बच्चे-बच्चे को इस बात का पता चल जायेगा...।"

इधर पिछले कुछ महीनों से अशू के जीवन की नरम डाली निश्चल रही थी। कोई नयी धमकी नहीं आई थी। अशू को लगता था उसके जीवन की नरम डाली पर डाक्टर बाबू के मजबूत और पवित्र हाथों ने छाया कर दी है।

और एक दिन जब अशू अपनी माँ की डायरी पढ़ रही थी, उसमें उसने फिर पढ़ा :

"दुनियाँ में भले लोग बहुत नहीं होते। पर जितने भी होते हैं उन्हीं के नाते कभी किसी को बुरा मत कहना। एक व्यक्ति भी जो तुम्हें अच्छा लगता है उसी की खातिर उन सब को क्षमा कर देना जिन्होंने तुम्हारा अहित किया है। आखिर उन्हीं बुरों की दुनियाँ ने ही तुम्हारा एक "अच्छा" तुम्हें दिया है...।"

अशू का अन्तःकरण एक प्रकार की शान्ति में आप्लावित हो उठा।

१०

सन्देश-वाहक

आज अशू की रिकार्डिग थी। ग्रामोफोन कम्पनी वालों ने अपने सब कलाकारों से बहुत अधिक पारिश्रमिक देकर अशू को बुलाया था। अशू की आवाज उन्हें बहुत अच्छी लगी थी। आज उन्हें अपने ऊपर गर्व था कि अशू को खोजकर उन्होंने कला के गगन में एक नए नक्षत्र को चमका दिया था।

"आपका गीत तो हमें पसन्द है पर जब तक हमें इसके लिखनेवाले की इजाजत न मिले, हम रिकार्ड नहीं कर सकते।"

"मैंने लेखक का नाम आपको बता दिया था।"

"हमने बहुत कोशिश की पर हमें उसका कोई पता नहीं चला कि वह कहाँ है।"

"फिर···?"

"अपने पास से हम गीत देते हैं आप गा दीजिए।"

"मैं गा तो दूंगी लेकिन···अगर आप यही गीत···।"

"हमें कोई आपत्ति नहीं। लेकिन अगर लिखनेवाले ने

आपत्ति की तो हमें हर्जाना देना पड़ेगा।"

"और अगर उसे कोई आपत्ति न हो।"

"यह हम कैसे कह सकते हैं। हाँ, आप हमें लिखकर दे दीजिये कि अगर हमारी कम्पनी को हर्जाना देना पड़ेगा तो उसकी जिम्मेदार आप होंगी।"

"हाँ, मैं लिख दूँगी।"

"तब हमें कोई आपत्ति नहीं। आप अपनी मर्जी का गीत गा सकती हैं।"

अशू का जी भर आया।

"आज मैं तुम पर गर्व कर लूँ, राजन!"—और अशू ने कम्पनी को लिखकर दे दिया कि इस गीत का लेखक गीत के गाये जाने पर यदि कोई आपत्ति करेगा तो उसके हर्जाने की जिम्मेदार वह होगी।

अशू गाने के कमरे में चली गयी। कम्पनी के साजिन्दे अशू का स्वर ज्ञान देखकर बहुत खुश हुए। जब उन्हें किसी ऐसे कलाकार की संगत करनी पड़ती थी तब उनके गज और उनकी मिजराब अपने-आप ही स्वर में लीन हो जाती थीं। गीत के आरम्भ का वाद्य संगीत उन्होंने सचमुच ऐसा सजीव रचा मानो साज स्वयं गीत को मुखर कर रहे हों। अशू ने गीत की अस्थायी उठाई:

लिख जा मेरी तकदीर को...
लिख जा मेरी तकदीर को, मेरे लिए।
मैं जी रही तेरे बिना, तेरे लिए।
लिख जा मेरी तकदीर को...

गीत लिखनेवाले ने "मैं जी रहा तेरे बिना" लिखा था, अशू ने 'जी रहा" को "जी रही" कर लिया था।

तानपुरा अशू खुद छेड़ रही थी। ओंकारनाथ ठाकुर के शब्द अशू के कानों में गूँज उठे, "मात्र स्वरों की साधना राग नहीं। राग वह सन्देश है जो कलाकार अपने कंठ के द्वारा लोगों तक पहुँचाना है।"

आज अशू का गला सोज से भरपूर था। "वह तो इस गीत की पीड़ा को जानता होगा जिसने यह गीत लिखा है। पर लगता है उसने गीत लिखा तो है पर उसकी पीड़ा को नहीं पहचाना है। लेखनी उसकी थी, पर इस गीत के बोल मुझ पर बीत गए हैं।" अशू के मन में विचार आये।···फिर उसने अन्तरे के बोल उठाए :

उम्र भर का प्यार बे-आवाज है
हर मेरा नग्मा मेरी आवाज है
हरफ मेरे तड़प उठते इस तरह
रात भर तारे जलते जिस तरह···

यहाँ संगीत का एक टुकड़ा वायलिन ने और एक बांसुरी ने उठाया, और फिर अशू ने अगला अन्तरा गाया :

उम्र मेरी बेवफा अब चुक रही
तेरे लिए बेचैन हूँ ओ निर्दयी
स्वप्न की दुनिया बसा, आजा जरा
रात बाकी है बहुत, न जा जरा।

और फिर अशू ने अस्थाई दोहराई :

लिख जा मेरी तकदीर को···
लिख जा मेरी तकदीर को, मेरे लिए

मैं जा रही तेरे बिना, तेरे लिए
लिख जा मेरी तकदीर को···

रिकार्डिंग समाप्त हो गई। अशू पर चारों ओर से प्रशंसा की बौछार होने लगी। पर अशू मानो अपने पूरे होश में नहीं थी। उसके चुप होठों पर यह शब्द काँप रहे थे, "मैं जी रही तेरे बिना, तेरे लिये।"

थकान अशू के मुख पर स्पष्ट दीख रही थी। कम्पनी-वालों ने उसे ड्राइंग-रूम में बिठा दिया और उसके लिये चाय भिजवा दी।

अशू ने अभी पहली ही घूंट भरी थी कि किसी ने दरवाजा खटखटाया और परदा हिला कर पूछा, "मैं दो मिनट के लिए आ सकता हूँ ?"

"आ जाइये।"

"आप को डिस्टर्ब किया है मैंने।"

"कोई बात नहीं।"

"आपने बहुत अच्छा गाया है।"

"शुक्रिया।"

"आप मुझे नहीं जानतीं, मैं आपको थोड़ा-सा जानता हूँ। मेरा नाम वसुदेव है।"

"मैंने आपका नाम सुना है।"

"मैं गाता हूँ···।" और वसुदेव चुप हो गया।

"आप चाय पियेंगे ?" अशू ने पूछा। मेज पर प्याला एक ही था। वसुदेव चुप था मानो उसने पीने के लिए "हाँ" कर दी हो। अशू को पानी के उस गिलास का ध्यान आ गया

जो चाय के साथ आया था पर उसने नहीं पिया था। अशू ने गिलास का पानी फेंक दिया और उसमें चाय बना दी।

"माफ कीजिये, और प्याला नहीं है।"

"आप की रिकार्डिंग है आज ?"

"आज नहीं कल। आज रिहर्सल है।"

"आपके तो पहले भी रिकार्ड होंगे ?"

"जी हाँ। आपने नीरा का नाम सुना है ?"

"सुना तो है।"

"मैंने बहुत से गीत उसके साथ गाए हैं। असल में उसी ने मुझे कलाकार बनाया था। हम दोगाने गाते थे। मैं उसके बगैर गा नहीं सकता था।"

"अब गा लेते हैं !"

"हाँ—अब तो गाता हूँ।"

"वह नहीं गाती ?"

"मेरे साथ नहीं गाती।" वसुदेव ने कहा। अशू कुछ पूछना चाहती थी, पर चुप रही।

"असल में वह मुझ से नाराज हो गई है···नाराज तो नहीं कहना चाहिए···वह तो नाराज नहीं हुई···उसके बाप ने मना कर दिया है···असल में हम शादी करना चाहते थे। वह बंगाल की है, उसका बाप उसकी शादी किसी बंगाली से करना चाहता है··।"

चाय लगभग समाप्त हो चुकी थी। अशू चुप रही।

"मैं बहुत बातें करता हूँ···।" वसुदेव ने ठहर कर कहा, "मैंने आपका नाम सुना था, जी चाहा कि देख लूँ···।"

"मेरा नाम ? मैं तो आज पहली बार इस कम्पनी में आई हूँ।"

"आप राजन को जानती हैं न ? राजन, जो गीत लिखता है...।"

"राजन ?" चाय की घूंट में कंपकंपाहट उठकर अशू के होठों पर आ गई।

"वह मेरा दोस्त है।"

"वह कहाँ है ?" अशू के मुँह से और कुछ न निकल सका।

वसुदेव मुस्करा दिया, "असल में हम एक ही बार मिले हैं। न उसके पहले कभी मिले, न बाद में। फिर भी उसे मैं अपना दोस्त कह सकता हूँ। मैं एक दिन वोल्गा में बैठा हुआ था...आप शायद जानती नहीं, मैं बहुत ड्रिंक करता हूँ...।"

अशू देखती रही, देखती रही। वह कुछ न बोल सकी। वसुदेव ने फिर कहना शुरू किया, "वहाँ किसी दोस्त ने उसे मेरा नाम बताया और कहा कि बहुत अच्छा गाता हूँ...वह अपनी टेबल से उठकर मेरी टेबल पर आ गया। मैं उस दिन अकेला था। हम बातें करते रहे और पीते रहे।"

"वह यहाँ आया था, दिल्ली ?"

"हाँ।"

"वह ड्रिंक करता है ?"

"हाँ, बहुत करता है। उस दिन तो बहुत पी थी। रात बहुत जा चुकी थी। वह मुझ से पूछने लगा, "तुम क्यों गाते हो ?" मैंने उसे नीरा की कहानी सुनाई। फिर यही सवाल

मैंने उससे किया, "तुम गीत क्यों लिखते हो ?"

"उसने क्या कहा ?"

"वह आप से प्रेम करता है ।"

"मुझसे ?"

"आपको मालूम नहीं ?"

"नहीं ।"

"उसने आपको कभी नहीं बताया ?"

"नहीं ।"

"मुझे तो उसने खुद बताया था ।"

"मेरा नाम लिया था ?"

"हाँ ।"

"आपको गलती हुई है ।"

"आप ही का नाम है अशू ?"

"हाँ ।"

"और तो इस नाम की कोई लड़की नहीं है जो गाती हो ?"

"नहीं ।"

"उसने मुझे बताया था कि वह केवल दो दिन के लिए दिल्ली आया है ।"

"वह शायद कलकत्ते रहता है ।"

"यह तो मुझे मालूम नहीं । अच्छा फिर मिलूँगा···।"

वसुदेव चला गया । आज पहली बार अशू का जी किया कि मिलनेवाला उठकर न जाय । वह उसका कौन था ? अशू का जी किया कि वह वसुदेव को पास बिठाकर उसकी बातें सुनती

रहे ।

"राजन ने ऐसे कहा होगा ?

कोई पहली बार में ही किसी का इतना दोम्त हो सकता है ?

राजन शराब पीता है ?

इतनी पीता है ?

उसने मेरा नाम लिया ?

यह वसुदेव कौन है ?

इसने यह सब मुझे क्यों बताया ?

क्या यह सच बोलता है ?··"

अशू के मन में प्रश्नों की एक बाढ़-सी आ गई । प्रश्न उठते रहे, मिटते रहे, और अन्त में अशू के मन में केवल एक प्रश्न रह गया, "राजन कहाँ है ?"

"आधे घंटे बाद अशू के दूसरे गीत की रिकार्डिंग थी। कमरे में वह अकेली बैठी हुई थी। उसकी पलकें कभी अपने आप लग जाती थीं, कभी चौंककर खुल जाती थीं । राजन के कहे हुए ये शब्द रह-रह कर अशू के मन में उठ रहे थे, "जैसे यह किरणें आई और आकर चली गई, इन्होंने आपको हिलाया नहीं, बुलाया नहीं, वैसे ही शायद मुझे भी चला जाना चाहिए था···।" और फिर अशू का मन रो-रो उठता, "और, राजन, तुम सचमुच चले गए···।"

कभी राजन के प्रति कृतज्ञता और कभी उससे शिकायत के भाव अशू के मन में उठते-मिटते रहे । उसके होंठ कभी फड़क उठते और कभी होंठ बन्द रहते और अशू मन-ही-मन

कहती, "सूरज की किरणें आईं और चली गईं। उनके आने के पहले भी अन्धेरा था, उनके जाने के बाद भी अन्धेरा है। लेकिन अगर मैं एक दिन प्रकाश न देखती, मैं कैसे जानती अन्धेरा किसे कहते हैं...।"

"रिकार्डिंग का समय हो गया है।" बाहर दरवाजे पर आकर किसी ने कहा।

"मैं अभी आती हूँ।" और अशू ने अपने विचार संभाल लिये।

गाने के कमरे में चाँदनी उसी तरह बिछी हुई थी। अशू तकिये का सहारा लगाकर माइक के सामने बैठ गई। साजों का घेरा मानो चौड़े पत्तों की भाँति था जिनके बीच में अशू की आवाज कमल के फूल की भाँति ऊपर तैर रही थी; कमरे के बाईं ओर कोने में से पियानों के स्वर लहरों की भाँति आ रहे थे। अशू ने राजन की गजल गाई। मतले का भाव इस प्रकार था :

फिर तुझे याद किया, हमने आग को चूमा,
इश्क प्याला जहर का,
फिर हमने एक घूंट की फरियाद की

आज फिर बहुत समय बाद वहीं रिकार्डिंग कम्पनी के दफ्तर में अशू को वसुदेव मिला था। दफ्तर में कलाकारों के लिए एक अलग और साधारण ढंग से सजाया हुआ• ड्राइंग रूम था, जहाँ आवश्यकता पड़ने पर वे कुछ देर बैठ सकते थे और चाय पी सकते थे।

"आप बहुत अच्छा गाते हैं।" अशू ने दो एक साधारण

बातें करने के बाद कहा ।

"आपको मेरी आवाज पसन्द है ?"

"बहुत ।"

"मैं केवल सैड सौंग गा सकता हूँ ।"

अशू मुस्करा दी ।

"आप नहीं जानतीं, मैं···।"

"क्या ?"

"आई एडोर यू···।"

"वसु···!"

"टाइम विल टैल यू, अशू !" और वसुदेव ने झुककर अशू के पैरों को छू लिया ।

वसुदेव ने अपनी भावनाओं को बड़े अचानक प्रकट किया था । अशू को कुछ घबराहट हुई, और विशेष कर उसके पैर छूने से, और वह कुरसी की पहली बाँह से सिमट गई ।

"मैंने आज तक किसी लड़की के पैर नहीं छुए···मेरे दिल में तुम्हारी कितनी इज्जत है···आपको इतनी सिन्सेरिटी कहीं नहीं मिलेगी ।"

वसुदेव ने कितना कुछ कह दिया । कभी वह अशू को 'तुम' कहता, कभी 'आप' कभी वह कोई वाक्य अंग्रेजी में बोलता, कभी ऐसे ही ।

"देखिये, वसु जी···!"

"मैं जानता हूँ आप मुझे प्यार नहीं करतीं लेकिन आप मुझे पसन्द करती हैं ।"

"मुझे केवल आपका गाना पसन्द है ।"

"यह क्या हुआ, मेरी आवाज पसन्द है, मैं पसन्द नहीं...।"

"हम कोई रिकार्ड सुनते हैं, हमें आवाज अच्छी लगती है, तो क्या मतलब हम...।"

"देखिये, अशू जी ! आप कलाकार हैं, कलाकार को हर सुन्दर वस्तु से प्यार होता है...।"

"ऐसा ही सही...।" अशू मुस्करा दी और कहने लगी, "यह मेज पर कितने सुन्दर फूल हैं...हम इनकी तारीफ करते हैं पर किसी की मेज पर रखा हुआ फूल हम अपनी जेब में डालकर नहीं ले जाते।"

"मैं यह तो नहीं कहता, अशू ! मैं तो केवल तुम्हारे पास बैठना चाहता हूँ, तुमसे बातें करना चाहता हूँ। कोई गीत गाऊँगा, शायद रो पड़ूँगा...और...और अगर तुम्हारे पैर छू लूँगा या हाथ छू लूँगा तो ऐसे ही जैसे किसी सुन्दर फूल की पँखड़ी को पल भर के लिए छू लेते हैं...मैं और तो आपसे कुछ नहीं चाहता।"

"आप नीरा से प्यार करते हैं ?"

"अब भी करता हूँ, अशू ! लेकिन, इसका यह मतलब नहीं कि मुझे कोई और सुन्दर वस्तु अच्छी न लगे...तुम तो कलाकार हो, अशू...!"

"तो कलाकार के नाते मैं केवल आपकी आवाज पसन्द कर सकती हूँ, और कुछ नहीं।"

"जब मैं बातें करता हूँ, तब भी तो आवाज वही

आवाज है।"

"नहीं। इस आवाज में विचार है, उस आवाज में स्वर है।"

"तो आप मेरे विचार पसन्द नहीं करतीं ? अच्छा, कभी समय आएगा मैं आपके विचार को बदल दूंगा।"

अशू चुप थी। शायद वह पूरी तरह वसुदेव की बातें भी नहीं सुन रही थी। कितने ही दिनों से उसके मन में वसुदेव से मिलने की इच्छा थी। वसुदेव उसके और राजन के प्रेम में एक सन्देश-वाहक बनकर आया था। अशू ने जीवन में पहली बार राजन के मुख से अपने लिये प्रेम होने की बात सुनी थी, पर अपने कानों से नहीं, वसुदेव के जरिये। इसलिए उसका मन वसुदेव के लिए आदर से भर गया था। वसुदेव ने उसे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण सन्देश दिया था। वसुदेव भला आदमी हो या बुरा···सुन्दर या भद्दा···वह वसुदेव से घृणा नहीं कर सकती थी। जितनी देर वसुदेव बातें करता रहा था, अशू सोचती रही थी कि किसी तरह बातों का रूख पीछे की ओर मुड़ जाए···वोल्गा की ओर···राजन की मुलाकात की ओर···और वसुदेव फिर राजन के शब्दों को दोहरा दे। पर बातों का रूख अभी तक उधर नहीं पलटा था।

"आज आप कौन सा गीत गाएँगी ?"

"एक गीत है 'मोर मन लौटा दे।"

"किसका गीत है ?"

"राजन का।"

"बहुत याद आती है राजन की ?" और वसुदेव मुस्करा दिया। अशू के मन में एक हूक उठी। बातों का रूख उधर हुआ तो, पर पूरी तरह नहीं। वसुदेव की मुस्कराहट ने और ऐसे सीधे प्रश्न ने अशू को कुछ भी न पूछने दिया।

रिकार्डिग का समय हो गया था। अशू गाने के कमरे में चली गई।

कोई तीन महीने बीत गये। रिकार्डिग कम्पनी के तैयार किये हुए रिकार्ड अब मार्केट में आ गए थे। आज अशू ने उनके दफ्तर से पिछले पैसे और नये रिकार्डों की एक एक कापी ली थी। नए रिकार्ड दफ्तर वालों ने अशू को एक बार बजा कर सुना भी दिए थे और अब अशू घर वापस जा रही थी। अभी-अभी जो अपना गाया हुआ गीत उसने सुना था उसके बोल रास्ता चलते उसके मन में घूम रहे थे :

ओ बालम
मोर मन लौटा दे
ओ बालम
तुमने बुलाई हम हंस हंस बोलीं
हम जो बुलाए तुम चुप रहे जालम,
मोर मन लौटा दे, ओ बालम

"अशू जी ! मैंने कहा···अशू जी !" चलते-चलते अशू खड़ी हो गई। पीछे से बड़ी तेजी से चलता हुआ वसुदेव उसकी ओर आ रहा था।

"वसु ?"

"मैं आपको घर तक छोड़ आऊँ ?"

'आप कैसे ?"

"मैंने एक गाड़ी खरीदी है। मैंने दूर से आपको देखा।"

अशू कुछ झिझकी।

"मैं इतना बुरा तो नहीं हूँ, अशू !"

"चलिये।"

वे पन्द्रह बीस कदम पीछे लौटे। वसुदेव की नई गाड़ी वहाँ खड़ी थी।

"आस्टिन है। केवल एक महीना हुआ है खरीदे। आपको रंग पसन्द है, लाइट ग्रीन ?"

"अच्छा रंग है। मुझे लाल रंग अच्छा नहीं लगता।"

"नई नई सीखी है, कोई ऐक्सीडेन्ट कर दूँगा।" वसुदेव हँस दिया।

"इतने दिनों में कोई दुर्घटना नहीं हुई ?"

"इतने दिन तो नहीं हुई, शायद आज हो जाए। दो बड़े कलाकार मर जाएँगे।" वसु हँसा और चलाने लगा।

"क्यों जिन्दगी अच्छी नहीं लगती ?"

"जिन्दगी अच्छी लगती है, लेकिन तुम्हारे साथ मरना भी कम अच्छा नहीं लगेगा।"

"फिर वही बातें।"

"जानती हो, मैंने गाड़ी क्यों खरीदी है ? मुझे मालूम था ऐसे तो तुम मेरे साथ कहीं नहीं जाओगी। अगर गाड़ी होगी तो शायद कभी रास्ता चलते लिफ्ट ले लोगी। और इन दिनों मैंने कितनी सड़कें घूमी हैं, कितने बस स्टैंड्ज पर खड़ा रहा हूँ। और कितनी हिम्मत है मैं तुम्हारे घर नहीं आया।

नहीं तो किसी से तुम्हारा घर पूछ कर आ सकता था।"

"तुम ऐसी बातें न करो, वसु ! दुःख होता है।"

"मेरे लिए दुःख होता है, तो मेरी बात क्यों नहीं सुनतीं ?"

"जो आप कहना चाहते हैं, मैं समझ नहीं पाती।"

"अशू ! आज मेरी गाड़ी पवित्र हो गई है ...।" वसुदेव ने कहा और फिर उसके होंठ भावनाओं से भर गए।

"अशू ! आपने कभी किसी से प्यार किया है ?" कितनी ही देर ठहर कर वसुदेव ने पूछा।

अशू का प्रेम उसका सबसे बड़ा भेद था और यह भेद जिसे प्रेम किया था उसे भी नहीं बताया था। पर आज वह वसुदेव को सब कुछ बता देना चाहती थी, अपने भले के लिए और वसुदेव के भले के लिए।

"हाँ, वसु !"

'किस से ?"

'नाम न पूछो तो कोई हरज है।"

"राजन से ?"

"नाम न पूछो।"

'अच्छा, नाम नहीं पूछता। यहीं रहता है ?"

"नहीं।"

"बहुत दिनों से नहीं मिला ?"

"बहुत बरसों से नहीं मिला।"

"तुम उसे भूल नहीं सकतीं ?"

"नहीं।"

तो जितने चान्स मुझे मिले हैं, मैं कभी न खोता। मैं बार-बार तुम्हारे पास ही क्यों आता ?"

"तो चान्स को खो देना तुम अच्छा समझते हो न ? मुझ में भी भटकन नहीं, वसु ! तुम जो चान्स मुझे दे रहे हो मैं उसे खो देना चाहती हूँ।"

"लेकिन साथ यह भी तो कह रहा हूँ कि मुझ में सिन्सेरिटी है। ऐसे चान्स तो जिन्दगी में बार-बार नहीं आते।"

"वास्तव में मकसद तो यह है, वसु, कि मन को शान्ति मिल सके, सान्त्वना मिल सके। अगर मुझे इन बातों से दुःख होता हो तो ?"

"व्हेन यू विल हैव नो यूथ, माई डियर, यू विल रिपेंट फार इट !"

"और इस तरह शायद जवानी में ही रिपेंट करना पड़ेगा ?" अशू हँस दी।

"आर्टिस्ट क्रेजी होते हैं।"

"सो वी बोथ आर !" अशू हँस दी।

वसुदेव कभी अशू के घर नहीं गया था। अशू रास्ता बताती जा रही थी और वसुदेव गाड़ी चला रहा था। अशू ने गाड़ी रोकने के लिए कहा, उसका घर आ गया था।

"आइये, अन्दर चलें।"

"चलिये।"

"यहाँ मैं आपको चाय ऑफर कर सकती हूँ।"

"बहुत शुक्रिया।"

वसुदेव कोई पन्द्रह मिनट बैठा होगा। अशू की दासी ने

चाय तैयार कर दी ।

"मैं किसी समय फिर भी आ सकता हूँ ।"

"आखिर हम क्या बातें करेंगे ?"

"इसका अर्थ हुआ मुझे नहीं आना चाहिए ।"

"हाँ, शायद नहीं आना चाहिए ।"

"शायद ?...."

पर उसी समय दरवाजे पर खटखट हुई और सलाम ने जाकर अशू को उत्तर देने के कष्ट से बचा लिया ।

"आप वसुदेव हैं...और यह हैं सलाम ।" अशू ने दोनों का परिचय करा दिया ।

बड़ी साधारण बातें हुईं । चाय का प्याला समाप्त होते होते वसुदेव को लगा कि अब वह सलाम की उपस्थिति को नहीं सहन कर सकेगा । पहली दृष्टि में ही वसुदेव को सलाम अच्छा नहीं लगा था । सलाम के मुख पर कुछ ऐसा भाव था जिससे वसुदेव ने अनुमान किया कि उस घर में सलाम के लिए पक्का और आदर का स्थान बन चुका है । वसुदेव को लगा कि इस घर में कभी भी उसे सलाम जैसा स्थान नहीं मिल सकेगा, और फिर...फिर उसके हृदय में सलाम के प्रति घृणा जाग उठी । यह घृणा वसुदेव के मुख पर पढ़ी जा सकती थी । अशू को वसुदेव की सलाम के सम्बन्ध में इतनी बुरी प्रतिक्रिया पसन्द नहीं आई । उसका जी किया कि सलाम को वह वसुदेव की आँखों में और उजला करके प्रस्तुत करे, पर फिर उसे वसुदेव के इस व्यवहार में अपने लिए भलाई निहित दिखाई दी । वसुदेव गलत समझता है तो समझता

रहे, पर इस गलतफहमी के कारण ही वह अशू से दूर रहेगा।

अशू मुस्कराती रही । वसुदेव ने एक बार अपने होंठ दाँतों तले चबाए, और फिर जितनी जल्दी हो सकता था वह वहाँ से चला गया।

अशू ने अपने मन-ही-मन कहा, "वसु, तुम राजन के प्रेम का सन्देश लेकर आये थे, मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ—पर अब तुम सन्देश-वाहक नहीं रहे, इसलिए फिर कभी मत आना···।"

आज की डाक जब आई तो एक लिफाफे पर लिखे अक्षरों को देखकर जैसे अशू के पोटों में बिजलियाँ तड़प गयीं ।

"अगर किसी भगवान को कभी सुननी है तो आज सुन ले ।"

अशू का श्वास उसके शरीर में नहीं समा रहा था। काँपती उँगलियों से उसने पत्र को खोला :

"अशू जी !

आपने कुकनूस पक्षी का नाम तो सुना होगा। जब वह दीपक राग गाता है, वह अपनी ही आग में जलकर राख हो जाता है। आज मेरे गीत भी कुकनूस पक्षी के पंखों की भाँति जल चुके हैं।

कहते हैं जब वर्षा ऋतु में उस राख पर लगातार वर्षा का जल बरसता है, तब उस राख में से एक नया कुकनूस जन्म लेता है। अनावृष्टि से झुलसे इस जीवन में मैं बादलों की बाट देख रहा हूँ। क्या मेरे गीतों की राख में से कोई नया गीत जन्म नहीं लेगा ?

अशू की समस्त चेतनाएँ भ्रान्त हो गईं···"क्या यह इसी

धरती की बात है···राजन का पत्र···यह कौनसी अनोखी रात का स्वप्न है···।"

और फिर अश्रू तड़प उठी। लेखक ने पत्र पर अपना पता नहीं लिखा था। "यह कितना जुल्म है····राजन पत्थर है···नहीं, नहीं, राजन पत्थर नहीं···राजन ने लिखा है "अनवृष्टि से झुलसे इस जीवन में मैं बादलों की बाट देख रहा हूँ।"···बादल···मेरी दोनों आँखें बादल बन जायेंगी, राजन !··· और न जाने अश्रू के मन में और क्या क्या वलवले उठे।

फिर अश्रू ने लिफाफे को बड़े ध्यान से देखा। लिफाफे पर कलकत्ते की नहीं, बम्बई की मुहर थी। अश्रू की समझ में कुछ न आया।

११

पुकार

आज की सी व्याकुलता अशू ने पहले कभी अनुभव नहीं की थी। अपने विकारों को संभालने की वह चेष्टा करती थी पर आज वह विवश थी। उसके शहर में आज ६ तारीख से लेकर ८ तारीख तक तीन दिन के लिए देश भर के लेखकों का एक सम्मेलन हो रहा था और आज उसने उड़ती उड़ती खबर सुनी थी कि राजन उस सम्मेलन में आया है। "वह सचमुच आया है ?" "कहाँ ठहरा है?" "वह अपने आप मिलने आयेगा ?" कितने ही प्रश्न अशू के दिल की धड़कन के साथ मिल गये थे। उत्तर किसी भी प्रश्न का नहीं आता था और अशू व्याकुल थी।

आखिर उसने अपने तानपुरे को सुर किया और कमरे के सारे दरवाजों को पर्दों से ढककर अपने आपको एकाग्र करने लगी। उसके कंठ से गीत के स्वर निकले जिसका भाव इस प्रकार था :

मन, तू भी लौट आ।
सांझ हो गई है, सब पंछी लौट आए हैं।
मन, तू भी लौट आ (१)
सब के दिलों में घर की याद लौटी तो पंख भी लौट चले।
नयनों में नींद भी लौटी, सब कुछ लौटने लगा।
मन, तू भी लौट आ (२)
धरती ने करवट बदली है, दिन भी रात में बदल गया है।
बावरे मन, तूने क्यों अपना नीड़ बिसार दिया है।
मन, तू भी लौट आ (३)

"मन, तू भी लौट आ···मन तू भी लौट आ।" अशू का आर्त्त हृदय चीत्कार कर उठा। अचानक तानपुरे का एक तार टूट गया।

"पंचम का तार टूट गया···मेरा गीत···मेरा मन···मेरा बावरा मन नहीं लौटता···मेरा पंछी अपना नीड़ भूल गया है···मेरा बावरा पंछी···मेरा पंछी···।" अशू जैसे बिलख उठी।

तारा ने धीरे से दरवाजे पर खटखट की, "दीदी, आजाऊँ?"

"कौन, तारा तुम?"

"हाँ, दीदी!"

"पंचम का तार टूट गया है, तारा!"

"मैं नया तार ले आती हूँ, दीदी! पंचम का स्वर फिर जाग उठेगा।"

"नहीं तारा, मुझे यह गीत गाते कई बरस हो गये हैं। हर रोज जब साँझ होती है और पंछी अपने डारें बाँध लेते हैं, मैं यह गीत गाती हूँ। मेरा नीड़ बर्बाद हो गया है, तारा, मेरा पंछी नहीं आया। सातों स्वरों को मैं किधर से ही क्यों न छेड़ूँ, कोई भी राग क्यों न हो, पर उनमें गीत केवल एक

ही गूंजता है, मेरी प्रीति का गीत...।"

"दीदी ! मेरी दीदी !"

"मैं और कितने बरस यह गीत गाती रहूँगी ? तानपुरे के तार कई बार टूटे और मैंने नये तार डाल लिये। मेरा गीत कभी भी पूरा नहीं हुआ.. मेरा मन...।"

"लो, दीदी ! यह नया तार मैंने अलमारी में से निकाला है। तानपुरे का कोई भी तार टूटा हुआ नहीं रह सकता। लाओ, मैं नया तार डाल दूँ।"

"अच्छा, तारा ! पंचम का स्वर फिर जाग उठेगा। मैं फिर यही गीत गाऊँगी। मैं फिर अपने पंछी को आवाज दूंगी—मन बावरे...।"

तारा ने तानपुरे में नया तार डाल दिया था। अशू ने तारों को सुर किया, और फिर गाने लगी :

साँझ हो गई है, सब पंछी लौट आए हैं।
मन, तू भी लौट आ।
सब के दिलों में घर की याद लौटी तो पंख भी लौट चले।
नयनों में नींद भी लौटी, सब कुछ लौटने लगा।
मन, तू भी लौट आ।

अशू गाते-गाते रो दी "मेरा पंछी नहीं लौटता, तारा ! वह कभी नहीं लौटेगा, वह कभी नहीं लौटेगा। मेरा पंछी... मैं खाली नीड़ को क्या करूँ...।"

अशू ने तानपुरे के तार ढीले कर दिये।

"यह क्या किया, दीदी ?"

"मैंने तानपुरे के सब तार खोल दिये हैं।"

"दीदी, तुम्हें क्या हो गया है ?"

"वह मेरी आवाज नहीं सुनता, तारा ! वह मेरी आवाज नहीं सुनता। पुकारते हुए मुझे कई बरस हो गये हैं। एक रात भी ऐसी नहीं आई जब मेरे मन का पंछी अपने नीड़ में बैठा होता। मेरा कोई गीत मेरी आवाज नहीं बनता···मैं गा गा कर थक गयी हूँ, तारा !···"

"दीदी, कौन कहता है तुम्हारा गीत तुम्हारी आवाज नहीं बनता। तुम्हारे गीतों ने लोगों को रुला दिया है, दीदी !"

"मैं आँसुओं को क्या करूँ, तारा ! आँसू तो मेरे अपने ही पास बहुत हैं। मेरा गीत मेरी आवाज नहीं बनता···।"

"दीदी, राजन तुम्हारी आवाज के योग्य नहीं। कोई भी तुम्हारी आवाज के योग्य नहीं—औरत किसी को इतना प्यार क्यों करती है, दीदी ?···"

"औरत कोई भी राग गाये, तारा, गीत एक ही गूँजता है, उसकी प्रीत का गीत।"

"पर, दीदी, राजन इस गीत के योग्य क्यों नहीं बनता।"

"योग्य बने या न बने, तारा, पर उसे देखकर ही मेरा गीत मुखर हुआ था···।"

"राजन सुनता क्यों नहीं इस गीत को ?"

"इसलिए तारा, कि मेरे स्वर मेरा गीत नहीं बनते। इसलिए कि मेरा गीत मेरी आवाज नहीं बनता। इसलिए कि मेरी आवाज मेरी पुकार नहीं बनती···।"

"हाय औरत !" तारा की आँखें डबडबा आईं।

"उसने मेरी आयु के सारे वर्ष घुला दिये हैं, तारा !"

"उसने कभी कुछ नहीं कहा, दीदी ?"

"लोग मेरे गीत सुनते और प्रशंसा की भरमार कर देते, पर उसने कभी कुछ नहीं कहा। एक दिन जब वह जाने लगा, मेरे हाथ में पैन था वह मैंने उसके कोट में लगा दिया। उसने एक बार मेरी ओर देखा और चला गया। कई वर्ष बीत गये हैं...।"

उस रात तारा अपने होस्टल नहीं गई। अपने साथ उसने अशू को खाना खिलाया और फिर उसके बिस्तर पर बैठकर कितनी ही देर तक उसे गाकर सुनाती रही। अशू के हाथों को धीरे-धीरे दबाती भी रही। और जब उसने अपने प्रयत्नों से अशू की आँखों में नींद भर दी तब उसी के बिस्तर पर पैताने की ओर चादर ओढ़कर सो गई।

अशू के स्वर मानो उसका गीत बन गये। उसका गीत मानो उसकी आवाज बन गया और उसकी आवाज मानो उसकी पुकार बन गयी। अगली शाम सचमुच राजन उससे मिलने आ गया।

अशू के शरीर को जैसे किसी ने कील दिया हो। अपनी आँखों पर जैसे उसे विश्वास न हो। अपने कानों पर जैसे उसे विश्वास न हो।

"कब आये आप ?" अशू के होठों में से यह शब्द इस प्रकार निकले जैसे पानी की एक लहर किनारे को छूकर लौटे और किनारे की मिट्टी हल्की सी काँप उठे।

"कल।"

राजन ने एक क्षण के लिए अशू के दाहिने हाथ को अपने

दोनों हाथों में ले लिया और फिर कुर्सी पर बैठ गया।

"कलकत्ता बहुत अच्छा शहर है ?"

"अब कलकत्ते में नहीं हूँ।"

"कलकत्ते नहीं···?"

"कोई दो साल हुए गुणीता ने एक लेफ्टिनेंट कर्नल से ब्याह कर लिया था ?···"

"ब्याह ?" अशू चकित हो गई।

"उसने मुझसे तलाक माँगा था, मैंने दे दिया।"

"तलाक ?"

"वास्तव में उसने मेरे साथ ब्याह करके ही भूल की थी। मैं उसकी सोसाइटी में फिरने के योग्य नहीं था···फिर मैंने वह नौकरी भी छोड़ दी···वह शहर भी छोड़ दिया···।" राजन ने यह बात सहज भाव से कही मानो यह कोई बड़ी साधारण बात हो। फिर राजन अशू को बताता रहा कि वह कभी किसी शहर में रहा, कभी किसी शहर में। कभी किसी समाचार-पत्र में नौकरी कर ली, कभी किसी में। कई महीने वह खाली भी रहा और फिर कुछ महीने उसे दिन में एक समाचार-पत्र में तो रात को दूसरे समाचार-पत्र में काम करना पड़ा था। कुछ ऐसे दिन भी आये थे जब भरी सर्दी में उसके पास ओढ़ने को लिहाफ तक नहीं था।

"आपने मुझे एक पेन दिया था।" अचानक राजन ने कहा।

अशू का मन उसके सारे शरीर में धड़क गया और अपनी उँगलियों के पोटों की वह स्वयं ठंडा अनुभव करने लगी।

"बहुत बरस तक मैंने उसे संभाल कर रखा था···।"

"फिर ?"

"फिर एक रात मैं सो रहा था, शायद किसी ने मेरी कमीज में से निकाल लिया···या कहीं गिर गया···।"

अब अशू ने राजन को एक नजर भर कर देखा। सचमुच राजन पहले से भी बहुत दुबला हो गया था।

"आपने मुझे एक पत्र लिखा था।"

"हाँ।"

"बम्बई की मुहर थी···।"

"हाँ।"

"अपना पता आपने क्यों नहीं लिखा ?"

"सोचता था न जाने आपके जीवन में मेरे पत्र के लिए स्थान हो या न हो···या पत्र का उत्तर आये या न आये···अगर पत्र का उत्तर न आया···और फिर इसी डर से मैं अपना पता नहीं लिखा कि उत्तर की आशा ही न रहे···।"

अशू ने अपनी भीगी पलकें नीचे झुका लीं।

"एक बात पूछूँ ?" अशू ने ठहर कर कहा।

"हाँ।"

"क्या फिर चले जायेंगे ?"

"मैं केवल एक दिन के लिए आया हूँ।"

"फिर इतने ही बरस नहीं आयेंगे क्या ?"

"आप जब बुलायेंगी, अशू जी, आ जाऊँगा।"

"आप नहीं आयेंगे।"

"एक बार बुलाकर तो देखिये।"

"आप आयेंगे ?"

"मैं शायद सदा के लिए आ जाऊँगा···।"

अशू हैरान थी—हैरान थी कि उसने राजन के यह शब्द अपने कानों से सुने थे। और उसे लगा कि हैरानगी से उसके होंठ जम गये हैं और अब वह बात नहीं कर सकते।

शाम को पाँच बजे उनकी सभा आरम्भ होनी थी और राजन का भाषण सबसे पहले था। साढ़े चार बज गये तो राजन उठ खड़ा हुआ।

"कल आप···।" अशू आगे न कह सकी।

"कल ?···अच्छा, आऊँगा।"

"सवेरे ?"

"हाँ।" और राजन चला गया।

रात काटे नहीं कट रही थी। आज अशू का हर साँस घड़ी की टिक-टिक के साथ मिला हुआ था···और ज्यों-ज्यों साँस तेज होता जाता था, अशू को लगता था कि घड़ी की टिक-टिक धीमी होती जा रही है।

सवेरे जैसे जैसे सूरज ऊँचा होता जाता था, अशू को लगता था उसका साँस घुटता जाता था।

"कोई ऐसे भी किसी की प्रतीक्षा करता होगा···।" आप ही अशू के होंठ फड़के और आप ही उसकी आँखें सजल हो गईं।

आखिर राजन आ गया।

"मैं रात देर से सोया था इसलिये सबेरे जल्दी नहीं उठ सका।" आते ही राजन ने कहा।

अशू ने गत रात्रि की अनिद्रा से भरी हुई आँखें उठाकर

एक बार राजन की ओर देखा और फिर प्यालों में चाय डालने लगी।

टिकट शायद पहले ही राजन के हाथ में था या उसने कोट की जेब से निकाल लिया था, वह उसे अनजाने ही उँगलियों में घुमा रहा था।

"यह क्या है।"

"रेल का टिकट...।"

"सीट ले ली है ?"

"हाँ।"

"कब के लिये ?"

"कल सबेरे आठ बजे...।"

अशू का जैसे जी बैठ गया और चाय की घूंट मानो एक जिद्द पकड़ कर उसके गले में अड़ गयी।

"एक गीत गाएँगी ?"

"सुनेंगे ?"

"बैठा रहूँगा, सुनता रहूँगा।" राजन का गला भर आया था और ऐसा अशू ने जीवन में प्रथम बार ही देखा था।

"कितनी देर ?"

राजन चुप रहा—चुप रहा—और अन्त में कुछ शब्द उसके कंठ से अनायास निकल गए, "जीवन भर सुनता रहूँगा।" और राजन ने अपना काँपता हुआ हाथ अशू के निश्चल पड़े हुए हाथ पर रख दिया।

अशू का आंचल जैसे बरसों की प्रतीक्षा से जीर्ण हो गया था। इतनी बड़ी घटना उसकी सहार के बाहर थी।

"गीत तो समाप्त हो जायगा...।" बड़ी देर बाद अश्रू ने हँस कर कहा मानो वह अपनी हँसी से बात को इतनी गंभीर होने से बचा लेना चाहती हो ।

"तव बातें करते रहेंगे...।" राजन ने भी उसी तरह हँस कर बात के भार को सम्भाल लिया ।

फिर वे साधारण बातें करते रहे । गीतों के रिकार्ड कैसे बनते हैं, कैसे बिकते है, गानेवाले के हिस्से में क्या आता है...

"आजकल मैं बम्बई रहता हूँ...।"

"बम्बई ?"

"पर वहाँ मेरा जी नहीं लगता ।"

"क्यों ?"

"पता नहीं कैसा शहर है...वहाँ लोग केवल पैसे की बातें करते हैं । यहाँ कभी कुछ लिखने को जो नहीं चाहता । वहाँ जैसे अपना कुछ नहीं होता...वहाँ लिखने के लिए मिलता ही कुछ नहीं...अगर मैं वह शहर छोड़ दूँ...।"

"फिर ?"

"यहाँ आ जाऊँ ।"

"यहाँ ?" अशू का जैसे साँस रुक गया ।

"मैं वह शहर छोड़ दूँगा ।"

"इस तरह तो अपने काम नहीं छोड़े जा सकते...।" अशू ने अपने आपको सम्भाल लिया ।

"मेरा क्या है, जहाँ रहूँगा, रोटी मिल ही जाएगी...।"

"कल सवेरे तो आप चले जाएँगे ?"

"कल...हाँ...शायद ।"

"टिकट......"

"टिकट तो वापस भी हो सकता है," कहते हुए राजन दहलीज के पास पहुँच चुका था।

उस रात अशू के स्वप्न न जाने क्या-क्या देखते रहे। कभी सिगनल हो जाता और गाड़ी न आती···कभी जैसे ही वह प्लेटफार्म पर पहुँचती, गाड़ी के चल देने की आवाज सुनाई देती···कभी उसके हाथ में टिकट होता और देखते-देखते वह टिकट से प्लेटफार्म बन जाता···

सवेरे जब अशू जागी, दिन के उजाले को देखकर वह इस तरह घबरा गयी मानो उसे गाड़ी पकड़नी थी और अब देर हो गयी थी।

उस दिन ही नहीं बल्कि अगले तीन दिन भी राजन रोज एक टिकट ले लेता और फिर गाड़ी चलने से कुछ देर पहले जाकर उस दिन का टिकट वापस कर आता और अगले दिन का ले आता। रेलवे का टिकट बाबू रोज कई रुपये काटकर जब बाकी पैसे वापस देने लगता तब राजन के मुख की ओर बड़े ध्यान से देखता, और फिर जब राजन अगले दिन का टिकट माँगता तब उसकी आँखें राजन के मुख पर गड़ जातीं।

"साहब, कल का टिकट न लीजिए। अगर कल जाना भी हुआ तब कोई न कोई सीट मिल ही जाएगी। ऐसे ही क्यों पैसे खराब करते हैं रोज-रोज," आखिर चौथे दिन टिकट बाबू ने कह ही दिया। इससे पहले दिन भी शायद वह यही कहना चाहता था पर कहते-कहते रुक गया था।

"नहीं, कल मैं जरूर जाऊँगा।" और राजन ने टिकट ले लिया।

उस दिन राजन पहले दिनों का अपेक्षा अधिक परेशान था। उस दिन अशू से भी बहुत कम बात की।

"आज तारा आएगी। वह अपने कॉलिज में ही लाइब्रेरियन लग गई है...और सनीचरवार को लाइब्रेरी बारह बजे बन्द हो जातो है। वह सीधी यहीं आएगी।" अशू ने राजन को बताया। अभी तक तारा राजन से मिली नहीं थी।

एक आनेवाली उदासी की परछाई दोनों के मुख पर पड़ रही थी। दोनों उस परछाई को अपने मुख पर से उतार देने का प्रयत्न कर रहे थे। शायद दोनों को एक दूसरे के इस यत्न का भी एहसास था। पर वे उसे जाहिर नहीं करना चाहते थे।

नीता कॉलिज से आयी थी और तारा लाइब्रेरी से। आज अशू और राजन दोनों शायद इस सहारे की बाट देख रहे थे।

"आप तो हमसे मिले बिना ही चले जा रहे थे न।" तारा और नीता ने मानो मिलकर उलाहना दिया।

"नहीं...।"

"आप तो परसों ही चले गये होते...बल्कि चौथे...।" नीता ने कहा।

"पर गया नहीं।"

अशू जो बात राजन से पूछना चाहती थी और इतने दिनों में भी नहीं पूछ सकी थी वह बात तारा ने पूछ ली।

"एक बात मुझे आपसे पूछनी है?"

"वह क्या?"

"आपने जब गुणीता से ब्याह किया था और हमारा

शहर छोड़ा था, तब अगर आप जाते समय हमसे मिलकर जाते तो आपका क्या हरज हो जाता—आप जानते हैं अशू दीदी की क्या दशा हो गयी थी…?"

"मेरी दशा भी अशू जैसी ही हुई होगी, तारा, तुम्हें विश्वास नहीं आ सकता।"

"पर अगर एक बार आ जाते तो हम आप को रोक तो न लेते।"

"कोई पन्द्रह बार आया था…।"

"कब ?"

"जब सारी दुनिया सो जाती थी—रात आधी होने लगती थी…।"

"फिर ?"

"बहुत देर तक दरवाजे पर खड़ा होकर लौट जाता था। तुम्हारे मकान से लगी हुई पानवाले की जो दुकान है कोई आधे घन्टे उसके आस-पास घूमता रहता था। कभी पान लेता था, कभी सोडे की बोतल, एक दो घूंट पी लेता था, फिर पानवाले की आँख बचाकर फेंक देता था…फिर सिगरेट ले लेता था, फिर सोडे की एक और बोतल…पर दरवाजा खटखटाने का साहस नहीं होता था…फिर अगली रात आता था…फिर…।"

तारा आगे कुछ न कह सकी।

नीता की आयु में अब सात वर्ष और जुड़ गये थे पर राजन के लिए वह बालिका ही थी । नीता ने कई गीत

सुनाए। उन गीतों में छः गीत राजन के भी थे। नीता उन गीतों की गम्भीरता को पूरी तरह नहीं समझ सकती थी, पर जब ऐसे गम्भीर बोल अल्हड़ होठों से सहज स्वभाव निकलते थे, वह शायद नीता के होठों को तो नहीं छूते थे पर राजन और अशू के मन में टीस उत्पन्न कर देते थे। राजन नीता की आवाज की प्रशंसा करता रहा, उसके हाथों को प्यार से थपथपाता रहा और अपनी वेदना को छिपाता रहा।

चाय समाप्त हो गयी। गीत भी समाप्त हो गये। राजन के जाने का समय आ गया था। तारा की हँसी जो सहज ही कपास के फूल की भाँति खिल-खिल पड़ती थी, उसके होठों में बन्द हो गयी।

अशू को कॉलिज जाकर संगीत का पीरियड लेना था। राजन ने उससे कहा कि वह अशू को रास्ते में उसके कॉलिज छोड़ता जाएगा।

रास्ते कभी इतने छोटे नहीं हुए थे, न कभी इस प्रकार समय के पंख लगे थे।

"कल जरूर चले जाएँगे?" अनायास ही अशू के भरे हुए गले से ये शब्द निकल गये।

"आज न पूछिये, नहीं तो मैं कल फिर नहीं जा सकूँगा।"

अशू ने राजन के इन शब्दों को जैसे अपने रोम-रोम में घोल लिया और फिर और कुछ नहीं पूछा।

"दो मिनट इस बाग में रुक जाएँ?" राजन ने रास्ते में आनेवाले एक बाग के पास से गुजरते हुए अशू से पूछा।

अशू बोली नहीं। राजन की ओर देखती हुई उसकी पलकें

झुक गईं। राजन ने गाड़ी रुकवा ली।

बाग में फूलों के गिर्द जैसे लोगों के घेरे पड़े हुए थे। राजन और अशू का जैसे आज फूलों से कोई सम्बन्ध नहीं था। दाहिने हाथ फूल-रहित एक पहाड़ी थी जो उजाड़ होने के कारण लोगों का ध्यान आकृष्ट नहीं करती थी।

पथ पर कुछ कांटेदार झाड़ियाँ थीं जिनसे बचकर निकलने में चलनेवाले का पैर उखड़ता था। राजन ने अशू के हाथ को अपने हाथ का सहारा दिये रखा और दोनों पहाड़ी की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर कुछ मिनट चुपचाप चलते रहे।

पगडंडी ने एक मोड़ लिया और दोनों पहाड़ी से नीचे उतर आये। अशू के मन में एक वलवला उठा···अगर कभी ···कभी ये क्षण ठहर सकते···ये क्षण उसका सम्पूर्ण जीवन बन जाते···या फिर उसका जीवन ही केवल इतने क्षणों का होता···

धरती निर्बाध गति से चल रही थी। उसने अशू की एक भी अवाज नहीं सुनी। कॉलिज में पीरियड लेने का समय होता जा रहा था। अशू और राजन दोनों चुपचाप गाड़ी में बैठ गये।

बाकी रास्ता बहुत ही कम था। संध्या समय का अंधकार गहरा हो चुका था और दोनों को एक-दूसरे के मुख अस्पष्ट दीख रहे थे।

राजन ने अशू की उँगलियों के पोटे अपने होठों से छुआ लिये और फिर एक बार राजन का श्वास अशू की उँगलियों पर झुक गया।

राजन की झुकी हुई आँखों में आँसू भर आये। गाड़ी के शीशे में से बाहर की किसी बत्ती की रोशनी आयी और अशू ने अपने उँगली से राजन के आँसू पोंछ दिये।

गाड़ी कॉलिज के फाटक के सामने रुक गयी थी। अशू की गरदन के पास राजन का झुका हुआ श्वास छुआ और वह श्वास मानो अशू के श्वास में लीन हो गया। अशू गाड़ी से उतर गयी।

अशू को केवल इतना पता लगा कि राजन ने एक बार गाड़ी में से मुड़कर अशू के बिछड़ते हुए मुख की ओर देखा और अशू की आँखों के आगे गाड़ी के स्थान पर अंधकार रह गया।

१२

एक प्रश्न

तारा—दीदी, बहुत दिनों से मेरे मन में एक प्रश्न उठता रहा है पर जैसे वह मेरी पकड़ में नहीं आया। वह लहर की भाँति आता है पर जब मैं उसे अपने हाथ में लेना चाहती हूँ तब उसका उछाला समाप्त हो जाता है और मेरे हाथ में बस चुल्लू भर पानी रह जाता है।

अशू—लहर जितना न सही, चुल्लू भर पानी जितना ही पूछ लो।

तारा—हँसी न उड़ाइये, दीदी !

अशू—अच्छा, कहो तारा !

तारा—दीदी, मैंने कई बरस से आपको केवल देखा ही नहीं है, आपके दिल की धड़कन भी सुनी है।

अशू—हाँ।

तारा—पर राजन को मैं आज तक नहीं समझ सकी।

अशू—क्यों ?

तारा—मेरे प्रेम में केवल प्रेम ही नहीं है आप के लिए

एक श्रद्धा भी इस प्रेम के साथ मिली हुई है । इसलिए मैं राजन को उसी तरह देख सकती हूँ जैसे आप देखती हैं···मुझमें जैसे स्वयं देखने की शक्ति नहीं है ।

अशू—मैं पूरी तरह नहीं समझी, तारा !

तारा—असल में मुझे पता नहीं चलता, दीदी, एक उलझी हुई बात को किस सिरे से पकड़ूँ । राजन का आपके जीवन में आना और चला जाना––चला जाना भी इस तरह जैसे खड़ा हुआ व्यक्ति अकस्मात लोप हो जाए––मुझे इस बात की थाह नहीं मिलती ।···दीदी, आपका प्रेम मुझे अत्यन्त विशाल मालूम होता है पर कुछ इस तरह···कुछ इस तरह······।

अशू—कहो, तारा······!

तारा—कुछ इस तरह, दीदी, जैसे सब कुछ रेत में मिलता जाता हो······विफल होता जाता हो······।

अशू—तारा, अगर इस प्रेम के भाग्य में रेत में मिलना ही हो तो मैं क्या कर सकती हूँ ?

तारा––केवल इतना ही नहीं, दीदी, मैं राजन को किसी ओर से भी नहीं समझ पाती हूँ । आप जानती हैं कि जितनी बार वह आपके पास आया चुपचाप आया और चला गया । आपके जीवन में उसने अपने लिए कभी कोई स्थान नहीं माँगा····और दीदी, इस बात का भी उसने संकेत नहीं दिया कि अपने जीवन में उसने आपके लिये कौनसा स्थान रखा है······।

अशू—तुम्हारा कहना ठीक है, तारा ! पर मैं जब अपने

आप को देखती हूँ मैं अपने-आप से यह प्रश्न पूछने योग्य नहीं रहती।

तारा--अब न सही दीदी, पर पहले से ही, शुरू से ही देखिये--वह बहुत जल्दी कभी नहीं आया, कई दिन बाद, किसी चेष्टा के साथ नहीं, ऐसे ही जैसे कोई भूला-भटका किसी पथ पर आ निकले--और फिर अचानक जान पड़ा कि वह इस शहर से चला गया······जाती बार भी उसने आपकी ओर कोई······। उसके चले जाने की घटना आपके सारे जीवन पर अपनी छाप छोड़ गयी और इससे कोई सम्बन्ध न हो···एक अजीब-सी···एक अजीब सी लापरवाही है उसमें······आप इसे क्या कहेंगी ?

अशू--पता नहीं, तारा--मैंने कभी कुछ कहना ही नहीं चाहा।

तारा--बड़ी एकतरफा-सी कहानी है यह।

अशू--हाँ, पर जब यह है ही ऐसी तब मैं इसे दोतरफा कैसे बना सकती हूँ ?

तारा--इस कहानी में जैसे एक ही पक्ष उभरता जाता है······।

अशू--जैसे कह लो, तारा !

तारा--अब जब राजन आया था दीदी, तब भी उसकी कुछ थाह नहीं मिली। जैसे उसके ब्याह की घटना एक अखबार में छपी हुई खबर की तरह आयी थी वैसे ही उसने अपने तलाक की बात सुना दी······और फिर उसका मिलना इस तरह था जैसे इन दोनों बातों से उसका कोई सम्बन्ध न

हो……एक अजीब सी……ठंडी सी……पथरीली सी……लापरवाही……।

अशू—तुम ठीक कहती हो, तारा ! मेरे सामने कोई प्रकाश नहीं—पर फिर भी पैरों को उधर जाने से रोका नहीं जाता।

तारा—किधर जाने से, दीदी ?

अशू—अंधकार की ओर।

तारा—कौन सा आकर्षण है इस अंधकार में, दीदी ? यह अंधकार आपको अपनी ओर क्यों बुलाता है ?

अशू—पता नहीं, तारा ?

तारा—क्या आपको इसका धुँधला-सा रूप भी इस अंधकार में दिखाई देता है ?

अशू—नहीं, तारा ! पर सारा अंधकार ही जैसे राजन हो।

तारा—क्या यह केवल कल्पना की नींव पर खड़ी हुई दीवार नहीं ?

अशू—शायद ऐसा ही हो, तारा ! पर अब और नींवें बना लेना मेरे बस का नहीं।

तारा—ऐसा अमूल्य जीवन आपने उसके लिए गवाँ दिया, दीदी !

अशू—मूल्य तो लगाने से लगता है, तारा ! और फिर क्या उसका मूल्य केवल प्रतिकार में ही आँका जा सकता है ?

तारा—कैसे ?

अशू—प्रेम का मूल्य शायद स्वयं ही चुकाना पड़ता है।

तारा—दीदी, जीवन मूल्य देकर अगर प्रेम पाल भी लिया, फिर भी जब तक वह स्वीकार नहीं किया जाता, वह किस गिनती में है ?

अशू—यह गिनती तो नहीं, तारा ! मेरे अन्तराल में जैसे और कुछ जीवित नहीं है। कोई और चीज नहीं धड़कती। कहीं भी हाथ धरूँ मुझे कुछ भी जागता हुआ प्रतीत नहीं होता। पर अगर इस कल्पना को छू दूँ—तो मेरे अन्तराल में जैसे ज्वालाएँ धधक उठती हैं।

तारा—पर जीवन तो इस प्रकार नहीं होता, दीदी, इतना अर्पण किया हुआ, इतना कल्पना में बसाया हुआ—कई घटनाएँ मार्ग में घट जाती हैं। पर मैं आपको देखती हूँ तो यह एक बहुत सुन्दर, रेश्मी-सी कहानी जान पड़ती है···।

अशू—जो भी हो, तारा, तुम्हारे सामने है। न मैं उसमें कुछ घटा सकती हूँ, न मैं उसमें कुछ बढ़ा सकती हूँ।

तारा—एक बात कहूँ, दीदी ?

अनू—हाँ, कहो।

तारा—वह लापरवाही उस नश्तर की भाँति नहीं जो हर घड़ी आपके स्वाभिमान को घायल करता हो और फिर वह घाव बढ़ता ही जाए।

अशू—मैं नहीं जानती, तारा !

तारा—जिस स्थान पर कांटा चुभा हो जब तक उसे न निकाल दो आस-पास चाहे लाख मलहम लगाओ, चीस तो पड़ती ही रहेगी।

अशू—तुम बहुत सयानी हो गयी हो, तारा ! पर तर्क के इंचों से प्रेम नापा नही जाता ।

तारा—अब मैं कुछ नही कह सकती, दीदी ! पर राजन का सारा चित्र धुंध में लिपटा हुआ है । मुझे कुछ दिखाई नहीं देता · ···।

अशू—मै कब कुछ दीखने के सहारे जी रही हूँ ।

तारा—आपके प्रेम की कहानी इस प्रकार है जैसे प्रश्न धधक-धधक कर जल रहा हो और उत्तर निरा अंधकार हो ।

अशू—अगर अपने-आप ही जलकर बुझ जाना मेरे भाग्य में है तो मै उसे कैसे मिटाऊँ, तारा ?

तारा—आपकी निष्ठा को प्रणाम है, दीदी ! पर मुझ जैसी को कभी-कभी यह निष्ठा भी उस पत्थर जैसी अनुभव होने लगती है जो अपने ही माथे को घायल कर दे······।

१३

उकाब

सप्ताह पर सप्ताह पक्षियों की डार की भाँति उड़ते जा रहे थे । अशू हैरान थी······राजन उसके जीवन में स्वप्न की भाँति आया और चला गया······सोई हुई कहानी राजन ने क्यों जगाई······अब न राजन की कोई चिट्ठी और न राजन की कोई खबर······।

कभी अशू को लगता कि सस्सी के पैरों को गरम लगने वाली बालू और भी गरम होकर उसके अपने पैरों के नीचे बिछ गयी थी···कभी उसे लगता कि चिनाब की जानलेवा लहरें और भी ऊँची हो गयीं और उसके हाथों में लिया हुआ प्रेम-प्रतिज्ञाओं का कच्चा घड़ा उसके हाथों में से निकलता जा रहा था···कभी उसे लगता कि समय की कैदों ने उसके शरबत में एक जहर मिला दिया था और अब एक एक घूँट उसके गले में अटक रही थी ।

राजन ने उसे कुछ भी नहीं बताया था नहीं तो वह उसे उसके शहर में ढूंढ लेती···चिट्ठी वह कहाँ लिखती···विवशताएँ

जो अब तक उसके गिर्द अपने फँद डालती रही थीं अब उसके शरीर को भींचने लगी थीं।

माँ के बुढ़ापे में अब बीमारी भी मिल गयी थी। माँ के कमजोर हाथों में न जाने कितनी ममता आ जाती थी। वह अशू को छाती से लगाकर कहती, "तुझे ऐसे ही देखते-देखते मैं एक दिन चली जाऊँगी......मुझे मर के भी चैन नहीं मिलेगा......।"

आँगन में लगे हुए नीम के पुराने पत्ते झड़ गये थे और नई कोंपलें फूट आयी थीं। नीम के नीचे चारपाई डाल कर अशू बैठी थी और झड़ते हुए पत्तों को मुट्ठी में भर रही थी जब उसे नए नए पत्तों में से नीता और सलाम के मुख दिखाई दिये।

नीता पढ़ाई समाप्त कर चुकी थी और अब उसे एक एम्बैसी के दफ्तर में नौकरी मिल गयी थी।

"माँ! अब नीता का ब्याह कर दो," अशू ने अचानक कहा।

"नीता का ब्याह...पर...।" माँ चुप हो गयी।

अशू माँ का आशय समझ गयी। बोली, "माँ, जब ऋतु बदलती है तब पुराने पत्तों को कोई भी टहनी पर लगाए नहीं रख सकता......।"

अशू ज्यों-ज्यों ब्याह के कामकाज को संभालती थी उसे लगता था कि सारी चिन्ताओं का बोझ उसके कंधों पर से उतरता जाता था और वह पक्षी के पंखों की भाँति हल्की फुल्की होती जाती थी, धरती के सारे बन्धन छूटते जाते थे

ग्रौर ग्रब खुला हुग्रा नीला ग्राकाश ही उसके सामने था ।

"दीदी···!" कभी कभी सलाम सिर झुका कर कहता, "ग्रापकी सेहत ग्रच्छी नहीं है, दीदी !"

"नहीं, पहले से तो ग्रच्छी हूँ ।"

"नहीं, दीदी, मेरा मतलब था······।" ग्रौर सलाम ग्राँखें परे को कर के कहता, "इस खुशी से पहले ग्रगर ग्रापके जीवन में ग्रौर कोई खुशी ग्रा जाती······।"

बहुत सादा सा ब्याह था । नीता का धर्म दूसरा था, सलाम का दूसरा, पर जैसे दोनों धर्मों ने ग्रपना दखल हटा लिया ग्रौर देश के कानून ने दोनों का ब्याह कर दिया ।

ग्राँगन में फूलों की महक ग्रभी तक फैली हुई थी, दावत के खानों की खुशबू ग्रभी सारे घर में बसी हुई थी, सबके चेहरों पर खुशी का रंग बिखरा हुग्रा था, जब रात के समय सलाम घर ग्राया । उसका रंग उस रात पीला हल्दी जैसा था ।

"दीदी !"

"सलाम !"

"मैंने एक बात सुनी है ।"

"क्या सलाम ?"

"पर मुझसे कही नहीं जाती ।"

"मैं क्या नहीं सुन सकती, सलाम ?"

"काश ! मैं कोई ग्रच्छी खबर ला सकता ।"

"जो कुछ भी खबर हो, मैं हिम्मत से सुनूँगी ।"

"दीदी!······कहते हैं राजन को कोई नामुराद बीमारी हो

गयी हैं।"

अशू को लगा जैसे उसे खोया हुआ राजन मिल गया हो। चिरकाल की खामोशी का भेद जैसे अनायास ही खुल गया··· और अशू को लगा अब राजन को उससे कोई नहीं छीन सकता···कोई नहीं छीन सकता···

"कहाँ है राजन ?" अशू ने पूछा।

सलाम को डर था न जाने अशू का क्या हाल हो पर अशू एक अबोध बालिका की भाँति प्रसन्न थी जिसे उसका खोया हुआ खिलौना मिल गया हो ·····साबत या टूटा हुआ···और जिसे पूरा विश्वास हो कि उसका खिलौना फिर साबत हो जाएगा······फिर वैसे का वैसा······

"सुना है वह स्विट्जरलैण्ड जा रहे हैं।"

अशू मुस्करा उठी। शोक सागर में मानो उसे सच्चे मोती मिल गये। स्वप्न ही स्वप्न उसके चारों ओर बिखर गये और फिर सारे स्वप्न गुलाब की पँखुड़ियाँ बनते चले गये और अशू ने उनकी मुट्ठियाँ भर-भर कर अपने ऊपर बिखेर लीं·········

एक ब्याह के बाद मानो घर में दूसरा ब्याह रच गया। अशू ने कितने ही नए कपड़े सिलवाए। कितनी ही छोटी-छोटी चीजें खरीदीं। अपनी माँ के हाथ की लिखी हुई पुस्तक अशू ने साथ रख ली। कितनी ही चीजें संभाल-संभाल कर नीता के हवाले कीं।·········सलाम को प्यार करते अशू थकती नहीं थी। तारा को अपनी बाँहों में ले-ले कर प्यार करती थी······

और जब अशू सलाम को अपनी दासी माँ सौंपने लगी, तो सलाम ने कहा, "आप कुछ न कहिये, दीदी···यह मेरी माँ है···मेरी अपनी माँ।"

"माँ अब मेरे साथ रहेगी।" तारा फट कर रोने लगी।

"अपने बेटे के जीते जी माँ और किसी के पास नहीं रहेगी।" सलाम ने मानो अधिकार जताते हुए कहा।

"मुझ जैसा शायद ही कोई खुश होगा······और मुझ जैसा शायद ही कोई उदास होगा···।" माँ कभी अपने आँसुओं को रोक लेती, कभी उसके आँसू बरबस निकल जाते। अशू के पंखों में जैसे उड़ाने भर गयी हों। राजन का एक पत्र आया—

"अशू जी ! मैंने कुछ वह चाहा था जो मुझे कोई भी भगवान नहीं दे सकता था। मैंने दोनों हाथ पसारे थे पर भगवान की झोली खाली देखकर मैंने अपने हाथ पीछे कर लिए। मुझे क्षमा कर देना··· मैं स्विट्जरलैंड जा रहा हूँ···न जाने लौट सकूँगा या नहीं। आठ तारीख को मेरा हवाई जहाज रवाना होगा। ···एक पल के लिए मैं आपको वहाँ खड़े देख लेता तो मेरी यात्रा सफल हो जाती···

आपका राजन।"

अशू ने पत्र अपनी आँखों से लगा लिया।

आठ तारीख का प्रभात जैसे अनेक शुभ लक्षणों से भरा हुआ था। सूर्य की किरणें ऐसी थीं मानो मौली की लड़ियाँ हों!

अशू, माँ, तारा, नीता और सलाम सब बम्बई के हवाई अड्डे पर खड़े हुए थे। मुसाफिरों का सामान देखा और

संभाला जा रहा था । अश्रू ने उस जहाज से जानेवाले सारे मुसाफिरों के नाम एक बार फिर पढ़े । अपने पासपोर्ट और टिकट को एक बार फिर टोहा; और फिर माँ के पास आकर बोली—

"माँ ! जब मैं माँ कहती हूँ, मेरी आँखों के सामने तीन चेहरे आ जाते हैं, एक मेरी माँ का जिसने मुझे जन्म दिया, दूसरा, तुम्हारा जिसने सारी उम्र मेरे लिए लगा दी, और तीसरा उस देवी का जिसने मेरी माँ को उस समय आश्रय दिया जब सारी दुनिया उससे विमुख थी······मेरे दिल में एक ही हसरत है कि उसे मैंने देखा नहीं । वह भी मेरी माँ थी, मेरी 'इकबाल' माँ······!"

दासी माँ के गले में सदा एक पतली सी सोने की जंजीर पड़ी रहती थी । माँ ने अपने गले से वह जंजीर उतारकर अश्रू के गले में डाल दी, और फिर माँ के सारे आँसू जैसे खिलखिला उठे—जंजीर के चौड़े नग को ढकने की तरह खोल कर माँ ने कहा, "बेटा, यह तेरी इकबाल माँ की तरफ से······।"

चौड़े नग के ढकने के नीचे उर्दू में लिखा हुआ था 'इकबाल'

"मेरी इकबाल माँ···तुम मेरी इकबाल माँ···।" अश्रू का संयम कभी इस प्रकार नहीं टूटा था, "तुमने सारी उम्र अपने आप को मुझसे छुपाए रखा···मेरी इकबाल माँ···मैं माँ को एक दासी समझती रही···मेरा गुनाह माफ कर दो, माँ······ मेरी माँ···!"

एक घड़ी के लिये जैसे सब भूल गये कि वे आज राजन और अशू को विदा करने आये थे । सबको ऐसा अनुभव हो रहा था मानो वे इकबाल माँ का स्वागत करने आये हों ।

"मैंने सोचा था कि मैं अपने आखिरी साँस के वक्त बताऊँगी···मैं डरती थी कहीं मेरे कारण मेरी बेटियों को दाग न लग जाए ।"

'माँ, यह तुमने क्या किया ?······मैं सारे दागों को चूम लेती तुम मिलीं भी तो कब जब बिछुड़ने का समय आ गया···।" अशू बिलख उठी ।

"दीदी, जब तक आप दूर रहेंगी मैं आपकी जगह इकबाल माँ की बेटी बनूँगी ।" नीता ने माँ को आलिंगन में भर कर कहा ।

"मुझे लुधियाने में खोई हुई मेरी माँ मिल गयी है, दीदी ! मैं अब माँ को अपनी आँखों से ओझल नहीं कर सकता······।" सलाम मर्द होकर भी रो दिया । माँ तो फिर औरत थी और उसने अभी-अभी अशू की, नीता की, तारा की और सलाम की बनकर देखा था ।

राजन जब हवाई अड्डे के भीतर के बड़े कमरे में आया उसकी आँखें जैसे किसी को खोज रही थीं । अशू ने सबसे पहले उठकर राजन का हाथ पकड़ लिया । राजन ने जैसे सारी की सारी अशू को अपनी आँखों में भर लिया । उसकी आँखों में आज असीम भूख थी, आज वह अशू को जी भर कर····· जी भर कर देख लेना चाहता था···

"आइये, मैं आपको अपनी इकबाल माँ से मिलाऊँ···।"

अशू राजन को बाँह से खींच कर माँ के पास ले आयी।

राजन चकित था—न अशू ने उसके दूर जाने का कारण पूछा था और न वह उदास थी।

"यह हैं हमारी इकबाल माँ...।" अशू ने कहा।

राजन का मुख आश्चर्य से भर गया। माँ ने राजन को बहुत प्यार किया।

"मैं अब बहुत दिन नहीं जिऊँगी, अशू...पर जितने दिन भी जिऊँ मुझे तुम्हारी खबर मिलती रहे...तुम्हारा राजन सदा खुश रहे...।" माँ ने कहा।

"माँ, जिन्दगी मौत से ज्यादा बलवान होती है। मेरी जिन्दगी ने मुझे मेरा राजन लौटा दिया है—अब उसे कोई नहीं छीन सकता—मौत भी नहीं...।" अशू का गला भर आया था।

"आप, अशू जी...!" राजन और कुछ न कह सका।

"अब आप मुझे छोड़कर नहीं जा सकते......।" अशू हँसने लगी।

नीता और तारा ने फूलों से राजन और अशू को लाद दिया और राजन को लगा जैसे स्वयं जिन्दगी ने अपने दोनों हाथों से एक प्याला भर कर उसके होठों से लगा दिया हो......

"डाक्टर बाबू आ गये हैं।" तारा का मुख चमक उठा।

"उन्होंने मुझे बताया नहीं था कि वह आयेंगे, और जब अचानक इतनी खुशी दे दी है उन्होंने......।" अशू ने आगे बढ़ कर डाक्टर बाबू का स्वागत किया।

"दीदी!" आज से पहले डाक्टर बाबू ने कभी अशू को

दीदी कहकर नहीं पुकारा था ।

"जी……!"

"आज मैं आपको दीदी कहने का अधिकार लेने के लिए आया हूँ ।"

"आप··मैं तो आपके सामने बहुत छोटी हूँ···।" अशू के मन में डाक्टर बाबू का जो सत्कार था वह उस सत्कार से झुक गयी ।

"नहीं, दीदी……आप तारा की दीदी हैं और आज मैं आपके पास से तारा को वापस ले जाने के लिए आया हूँ···।"

"तारा को !"

"मैं पहले भी एक बार तारा को लेने आया था, पर उस समय मेरे हाथ कमजोर थे और मैं तारा के हाथ उस समय नहीं थाम सका था । आज मैं मजबूत हाथों से आया हूँ···।"

"आप···!" अशू देखती रह गयी ।

'मेरी अँगूठी अभी तक तारा की अंगुली में पड़ी हुई है···।"

तारा रो कर डाक्टर बाबू के गले से लिपट जाना चाहती थी, पर बरसों के पड़े हुए फासले ने तारा के पैर रोक दिये और वह अशू के गले से लिपट कर रोने लगी ।

"मैं किस झोली में इतनी खुशी सम्भालूँ……तारा, तेरे भाग्य का चन्द्रमा नहीं सूर्य चढ़ आया है···।" अशू ने कहा और तारा को अपनी बाहों में कस लिया । सलाम और राजन डाक्टर बाबू से बगलगीर हो गये ।

"आपने क्यों इतनी देर अपने-आप को छुपाए रखा ?" अशू ने एक उलाहने के तौर पर कहा ।

"मैं कुछ तो तारा के लायक बन लेता।" डाक्टर बाबू की लोहे जैसी दृढ़ता आज सर्वथा पिघली हुई थी।

"तारा की माता जी कहाँ रहती हैं ?" डाक्टर बाबू ने ही फिर कहा।

"वह गाँव में ही रहती हैं, गाँववाला घर वह नहीं छोड़तीं। तारा छुट्टियों में उनके पास चली जाती है। दो बार मैं भी गयी हूँ··बड़ी कमजोर हो गयी है।" अशू ने बताया।

"दीदी, आप उन्हें लिख दीजियेगा कि वह मुझे क्षमा कर दें······।" डाक्टर बाबू ने सिर झुका लिया।

मुसाफिरों को बुलाने का घंटा बजा। अशू ने राजन का हाथ पकड़ लिया। दुनिया की कोई ऐसी असीस नहीं होगी जो माँ ने उन्हें न दी हो, और दुनिया का कोई प्यार नहीं होगा जो नीता, तारा, सलाम और डाक्टर बाबू ने न दिया हो···

हवाई जहाज के पंखों में उड़ान भर गयी···नीले खुले आकाश में जैसे उकाब उड़ता जा रहा था।